रजिस्टरी कराई गई

ओ३म्

आर्य्याभिविनय

जिसको

लाला जीवनदास पेन्शनर लाहौर

ने

स्पष्टार्थ करके पद-पदार्थ सहित

छपवाया

बाम्बे मेशीन प्रेस लाहौर में दुनीचंद प्रिंटर
के प्रबन्ध से छपी।

प्रथमबार १०००] सन् १९११ [मूल्य ।)

ओ३म्

आर्य्याभिविनय

निवेदन

श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराज कृत ग्रन्थों में स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना विषयक जैसा यह उत्तम ग्रन्थ है वैसा अन्य कोई नहीं परन्तु इसकी भाषा शुद्ध तथा सरल न होने के कारण सर्वसाधारण इससे लाभ नहीं उठा सकते, इसलिये इसकी भाषा सरल करके कई एक विद्वानों की सहायता द्वारा मन्त्रों के अर्थ ठीक कर पद पदार्थ सहित छपवाया है, आशा है कि सज्जन जन इसको पढ़ सुनकर लाभ उठा मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

जीवनदास पैन्शनर

लाहौर

ओ३म्

उपक्रमणिका

—:※:—

१.—जो परमात्मा सबका अन्तरात्मा, सच्चिदानन्दस्वरूप, अनन्त, न्यायकारी, निर्मल, दयालु, सर्वसामर्थ्ययुक्त, सब सत्यकामनाओं का पूर्ण करने वाला हमारा इष्ट देव है उसी के भरोसे पर हमने सब लोगों के हितार्थ चैत्रमास शुक्लपक्ष दशमी गुरुवार सम्वत् १९३२ विक्रम को इस ग्रन्थ का आरम्भ किया।

२.—इस ग्रन्थ में दो वेदों के कतिपय मंत्रों का प्राकृत=प्रचलित भाषा में व्याख्यान किया है, आशा है कि इस ग्रन्थ से सब लोगों को सहज में ही परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान लाभ होगा।

३—जिस विमल,सुखकारक,पूर्णकाम,सर्वव्यापक ब्रह्म का वेदों में प्रतिपादन है उसी की स्तुति प्रार्थना उपासनादि विषयों का इस ग्रन्थ में वर्णन कियागया है अन्य का नहीं।

४—जो नर इस संसार में जितेन्द्रिय और निर्वैर होकर अत्यन्त प्रेम, विद्या, विचार और सत्संगपूर्वक परमात्मा का आश्रय लेते हैं वही भाग्यशाली हैं, क्योंकि वह यथार्थ ज्ञान लाभ द्वारा सम्पूर्ण दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं और जो विषयलम्पट विद्या, विचार तथा धर्म से रहित हैं वह छल कपट अभिमान दुराग्रह आदी दोषों से युक्त होकर ईश्वरपरायण नहीं होते वह पुनः२ जन्म मरण रूप दुःखसागर में गोते खाते हैं, अतएव सब पुरुषों को

उचित है कि परमात्मा की भक्ति में निमग्न होकर अपने जीवन को पवित्र बनावें अर्थात् ईश्वराज्ञानुकूल आचरण करते हुए लोक परलोक की सिद्धि करें, यही मनुष्य का परमधर्म और यही उसके लिये कृतकृत्यता है।

५—इस ग्रन्थ में संक्षेपतः मंत्रों का केवल आध्यात्मिक अर्थ किया गया है व्यावहारिक विद्यासम्बन्धी नहीं, परन्तु वेदभाष्य में उक्त दोनों अर्थ स्फुट किये जावेंगे, आशा है कि इस ग्रन्थ के पठन पाठन द्वारा परमात्मा का स्वरूपज्ञान उपलब्ध होकर सब पुरुषों में ईश्वर-भक्ति तथा परस्पर प्रेमभाव बढ़ेगा और नास्तिक तथा पाखण्ड मत आदि का नाश होकर आस्तिक धर्म के ग्रहण से लोग कृतार्थ होंगे, यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है।

दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

आर्य्याभिविनय प्रारम्भः

-:o:-

प्रार्थना विषय—ओं शन्नो मित्रः शं वरुणःशन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥१॥

ऋ० अ० १ अ० ६ व० १८ मं० ९

पदपाठ—शं। नः। मित्रः। शं। वरुणः। शं। नः। भवतु। अर्य्यमा। शं नः। इन्द्रः। बृहस्पति। शं। नः। विष्णुः। उरुक्रमः।

पदार्थ—(मित्रः) सर्वहितकारी परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हो। (वरुणः) सर्वोत्तम परमात्मा (शं) कल्याणकारी हो। (अर्य्यमा) न्यायकारी परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी (भवतु) हो। (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् तथा (बृहस्पतिः) विद्या का स्वामी परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हो (विष्णुः) सर्वव्यापक तथा (उरुक्रमः) महाबली परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हो।

व्याख्या०—हे सच्चिदानन्द अनन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव! हे अद्वितीय अनुपम, जगदादि कारण! हे निराकार सर्वशक्तिमन् न्यायकारिन्! हे सर्व जगदुत्पादक सर्वाधार जगदीश! हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्! हे करुणाकर, परम

सहायक पिता ! हे सकल दुखविनाशक, सर्वानन्दप्रद ! हे अविद्यान्धकार निर्मूलक विद्यार्क प्रकाशक ! हे परमैश्वर्य्य दायक, साम्राजप्रसारक ! हे अधम उद्धारक, पतितपावन मान्यप्रद ! हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद ! हे विश्वासविलासक ! हे निरञ्जन = निर्मल, नायक, शंप्रद = सुखदायक ! हे नरेश = नरपतिः, निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् सदुपदेशक, मोक्षप्रद ! हे सद्गुणाकर, निर्मल, निरीह = इच्छारहित, निरामय = रोगरहित, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक ! हे दारिद्रविनाशक, निर्वैरविधायक, शत्रुविनाशक ! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक ! हे सुधर्मसुप्रापक ! हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद ! हे सन्तति पालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक ! हे पुरुषार्थप्रापक दुर्गुणनाशक सिद्धिप्रद ! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़क ! हे गर्व, कुक्रोध, कुलोभ, विदारक हे परमेशपरेश परमात्मन् परब्रह्मन् ! हे जगदानन्दक सर्वव्यापक परमेश्वर ! हे सूक्ष्म, अछेद्य, अजर, अमर, अभय, निरिन्धन ! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुण, अतुल, विश्वाद्य = विश्व का आदिकारण, विश्वबन्ध, विद्वद्विलासक ! आप इत्यादि अनन्त विशेषण वाच्य हैं, हे मंगलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हैं, हमको सर्वदा सुख देने वाले हों, हे सर्वोत्कृष्ट स्वीकरणीय वरणेश्वर ! आप सर्वोत्तम हैं हमको उत्तम सुखदायक हों, हे पक्षपात रहित न्यायकारिन् ! आप न्यायकारी हैं हमको दुष्टों के अत्याचार से बचायें, हे परमैश्वर्य्यवान् ईश्वर ! हमको स्थिर सुख दें, हे महाविद्यावाचोधिपते परमात्मन् ! हमको सर्वोत्तम सुख देने वाले आप ही हैं, हे सर्वव्यापक अनन्तपराक्रमयुक्त ! हमको परा-

क्रम प्रदान करें, हम लोग जो कुछ मागेंगे आप ही से मांगेंगे क्योंकि सब सुखों के दाता आप ही हैं. हमको सर्वथा आप ही का आश्रय है अन्य का नहीं, हे दयामय ! आप ऐसी कृपाकरें कि हम आपको छोड़कर किसी अन्य का आश्रय कभी न लें, हे परमपिता परमात्मन् ! हमको दृढ़ निश्चय है कि आप अवश्य ही हमें सदैव सुखी रखेंगे, क्योंकि आप अपने अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते किन्तु सदैव रक्षा ही करते हैं ॥

स्तुति विषय—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारम् रत्नधातमम् ॥ २ ॥

ऋ० १ । १ । १ । १

पद०—अग्निं । ईळे । पुरोहितं । यज्ञस्य । देवं । ऋत्विजं । होतारं । रत्नधातमम् ।

पदा०—(अग्निं) उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा की (ईळे) मैं स्तुति करता हूं जो (पुरोहितं) सबका हितकारक (यज्ञस्य, देवं) यज्ञ का देव = पूज्यतम (ऋत्विजं) सब ऋतुओं का नियामक (होतारं) सब पदार्थों का उत्पादक तथा संहारकर्त्ता और (रत्नधातमं) सूर्य्यादि प्रकाशक लोकों का धारक है ।

व्याख्या०—हे सर्वहितकारक परमात्मन् ! आप सब जगत् के हितसाधक तथा अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्य्यन्त सब वेद-विहित कर्मों के स्वामी, प्राणिमात्र के कल्याणार्थ सब ऋतुओं को यथाक्रम लाने वाले, सृष्टि की आदि में जीवों के कर्मानुसार

नानाविध पदार्थों को रचकर प्रलयकाल में लय करने वाले और सूर्य्य से पृथिवी पर्य्यन्त सम्पूर्ण लोकों के धारण करने वाले हैं।

स्तु० त्रि०—अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

ऋ० १ । १ । १ । ३

पद०—अग्निना । रयिं । अश्नवत् । पोषं । एव । दिवे । दिवे । यशसं । वीरवत्तमं ।

पदा०—(पोषं) आत्मा तथा शरीर की पुष्टि करने वाला (यशसं) सत्कीर्ति बढ़ाने वाला और (वीरवत्तमं) अत्यन्त बीर पुरुषों का उत्पन्न करने वाला (रयिं) धन (अग्निना, एव) केवल परमात्मपरायण होने से ही (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (अश्नवत्) प्राप्त होता है।

व्याख्या०—हे महादातः ईश्वर अग्ने! आप ऐसे कृपालु दयालु हैं कि जो पुरुष तन मन धन से आपकी भक्ति करता है उसको आप ऐसा धन प्रदान करते हैं जिससे न केवल आत्मिक और शारीरिक पुष्टि होती है किन्तु उत्तम कीर्ति बढ़ती और शौर्य्य धैर्य्य चातुर्य्य बल पराक्रम आदि शुभगुण सम्पन्न दृढ़ अंगी धर्मात्मा न्याययुक्त पुरुष उत्पन्न होकर लौकिक और पारलौकिक सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कराते हैं, ऐसा उत्तम धन एक मात्र ब्रह्मचर्य्य व्रत है जिसकी पूर्ति केवल ईश्वर में सच्चा प्रेम होने से ही होसक्ती है अन्यथा नहीं, यह ब्रह्मचर्य्य ही है जिसका यथायोग्य पालन करने से उक्त सम्पूर्ण गुण प्राप्त होसक्ते हैं अर्थात

ब्रह्मचर्य्य द्वारा ही सत्यविद्या का सम्पादन होता और उससे ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति होकर लोक परलोक की सिद्धि होती है ॥

प्रा० वि०—अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । १ । २

पद०—अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । एह । वक्षति ।

पदा०—(अग्निः) जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पूर्वेभिः) प्राचीन (उत) और (नूतनैः) नवीन (ऋषिभिः) ऋषियों से (ईड्यः) स्तुति योग्य है (सः) वह (एह) इस लोक में (देवान्) हमारी इन्द्रियों को (वक्ष्यति) प्रकाशित करें ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप पूर्व और वर्त्तमान दोनों कल्पों के ऋषियों से स्तुति किये जाने के योग्य हैं,आप ऐसी कृपा करें कि हमारी इन्द्रियां इस लोक में शुभकर्म करने में समर्थ हों और हम लोग आपको क्षणमात्र भी न भूलें ॥

प्रा०वि०—अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥ ऋ०१ । १ । १ । ५

पद०—अग्निः । होता । कवि । क्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवस्तमः । देवः । देवेभिः । आगमत् ।

पदा०—(अग्निः) सबका प्रकाशक (होता) कर्मफलदाता (कवि) सर्वज्ञ (क्रतुः) जगत्कर्त्ता (सत्यः) अविनाशी (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत कीर्तिमान् और (देवः) दिव्यगुण युक्त परमात्मा (देवेभिः, आगमत्) सब दिव्य गुणों के सहित हमारे हृदय में प्रकट हो ।

व्याख्या०—हे सर्वद्रष्टा=सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप अविनाशीरूप से सब जगत् के जनक, अद्भुत कीर्तिमान् और अत्यन्त उत्तम हैं। हे जगदीश ! आपसे बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं, आप दिव्यगुणों के सहित हमारे हृदय में प्राप्त हों जिससे हम दिव्यगुणयुक्त होकर सदा आनन्दित रहें॥

उप०वि०—यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥ ६॥

ऋ०१। १। २। ६॥

पद०—यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वं। अग्ने। भद्रं। करिष्यसि। तवेत्। तत्। सत्यं। अङ्गिरः।

पदा०—(अङ्ग) हे बन्धु ! (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! (अङ्गिरः) हे प्राणप्रिय ! (यत्, भद्रं) जो सुख (त्वं) आप (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वालों के लिये (करिष्यसि) प्रदान करते हैं (तत्) वह (तवेत्) आपका ही (सत्यं) सच्चा दान है।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! जो आपको आत्मसमर्पण करता है उसको आप ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्रदान

करते हैं। हे प्राणप्रिय परमात्मन् ! अपने भक्तों को परमानन्द देना आप ही का अटल नियम है ॥

स्तु० वि०—वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥७॥

ऋ० १। १। ३। १।

पद०—वायो। आयाहि। दर्शत। इमे। सोमाः। अरङ्कृताः। तेषां। पाहि। श्रुधी। हवम।

पदा०—(वायो) हे अनन्त बलयुक्त (दर्शत) हे दर्शनीय परमात्मन् ! (आयाहि) आप हमको प्राप्त हों (इमे, सोमाः) यह उत्तम २ रस जो (अरङ्कृताः) हमने भलेप्रकार सम्पादन किये हैं (तेषां) उनकी (पाहि) रक्षाकरें और (हवं) हमारी प्रार्थना को (श्रुधी) सुनें ॥

नोट—६—७ मन्त्र मूल में नहीं छपे थे इसलिये ८ (क) और ८ (ख) नं० दिये गये हैं।

व्याख्या०—हे अनन्तबलयुक्त दर्शनीय परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से हमारे हृदय में प्राप्त हों और जो उत्तम २ पदार्थ हमने यज्ञार्थ तैयार किये हैं उनकी आप रक्षा करें ताकि हमारा यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो, हमारी इस प्रार्थना को कृपाकरके स्वीकार करें ॥

प्रा० वि०—पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ८ ॥

ऋ० १ । १ । ६ । १०

पद०—पावका । नः । सरस्वती । वाजेभिः । वाजिनीवती । यज्ञं । वष्टु । धिया । वसुः ।

पदा०—हे परमेश्वर आपकी कृपा से (नः) हमारी (सरस्वती) बाणी (पावका) पवित्र करने वाली हो और (वाजेभिः) उत्तम अन्नादि के सेवन से (वाजिनीवती) बलवती होकर (धिया) विचारपूर्वक (वसुः) वर्त्तमान हो और (यज्ञं) वेदोक्त कर्मों को (वष्टु) सब प्रजा के सन्मुख प्रकट करती रहे ।

व्याख्या०—हे वाक्पते ! सर्वविद्यामय परमात्मन् ! आप ऐसी करें कि हम लोग सदा ऐसे उत्तम और सात्विक भोजनों का सेवन करते रहें जिनके प्रभाव से हमारी बाणी पवित्र तथा मधुर होकर सबको प्रसन्न करने वाली हो और सब प्रजा के सन्मुख वैदिक कर्मों का यथाविधि प्रकाश करती रहे ।

उपदेश वि०—पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥ ऋ० १ । १ । ९ । २ ॥

पद०—पुरूतमं । पुरूणां । ईशानं । वार्य्याणां । इन्द्रं । सोमे । सचा । सुते ।

पदा०—हे मनुष्यो ! तुम (सोमे, सुते) वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान काल में (सचा) सब मिलकर (पुरूतमं) सब से बड़े (पुरूणां, ईशानं) सब के नियन्ता (वार्य्याणां, इन्द्रं) राजाधिराज परमात्मा का अभिप्रगात = स्तवन करते रहो जिससे तुम पवित्र होकर परमात्मदर्शन के भागी बनो ।

व्याख्या०—सब मनुष्यों को चाहिये कि वैदिक कर्म करते हुए सदा परब्रह्म की स्तुति किया करें, क्योंकि सब उत्तम कर्मों का विधायक और फलदाता वही राजों का राजा परमात्मा सब का नियन्ता है ॥

प्रा० वि०—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १० ॥

ऋ० १ । ६ । १५ । ५

पद०—तं । ईशानं । जगतः । तस्थुषः । पतिं । धियं । जिन्वं । अवसे । हूमहे । वयं । पूषा । नः । यथा । वेदसाम् । असत् । वृधे । रक्षिता । पायुः । अदब्धः । स्वस्तये ।

पदा०—(वयं) हम लोग (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (जगतः, तस्थुषः) चराचर जगत् के (ईशानं) नियन्ता (पतिं) स्वामी (धियं, जिन्वं) शुद्ध बुद्धि से जानने योग्य (तं) परमात्मा

का (हूमहे) आवाहन करते हैं (यथा) जैसे वह (वेदसां) विद्या आदि आत्मिक धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (अदब्धः) निरन्तर (पूषा, रक्षिता) पुष्टि और रक्षा करने वाला है वैसे ही (नः) हमारे (स्वस्तये) स्वास्थ्य के लिये (पायुः) रक्षा करने वाला हो ।

व्याख्या०—हे सर्वाधीश ! आप जड़ चेतन सब जगत् के रचने वाले, सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप बुद्धिप्रकाशक और सब के पोषक हैं, आप से प्रार्थना है कि जिसप्रकार आप विद्यादि उत्तम धन देकर सर्वदा हमारी रक्षा और पुष्टि करने में तत्पर रहते हैं उसीप्रकार हमारे स्वास्थ्य की भी रक्षा करें जिससे हम सदैव उत्तम कर्मों की उन्नति करते हुए आनन्दित रहें ॥

प्रा० वि०—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ॥ ११ ॥

ऋ० १ । २ । ७ । १६ ॥

पद०—अतः । देवाः । अवन्तु । नः । यतः । विष्णुः । विचक्रमे । पृथिव्याः । सप्तधामभिः ।

पदा०—(यतः) जिस निष्कामभाव से (विष्णुः) परमात्मा ने (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर सूर्य्यपर्य्यन्त (सप्तधामभिः) सात धामों से युक्त जगत् को (विचक्रमे) रचा है (अतः) उसी निष्कामभाव से (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ।

व्याख्या०—१-हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! जिस निष्कामभाव से आपने पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य और चांद इन सात निवास स्थानों तथा गायत्री आदि सात छन्दों में विस्तृतविद्या से युक्त वेद को रचा है उसी निष्कामभाव से प्रेरित होकर विद्वान् लोग सब प्राणियों की रक्षा करें ॥

२-जिस हेतु वा प्रयोजन के लिये सूर्य्य अपनी सात किरणों द्वारा पृथिवी आदि सब लोकों में आक्रमण करता है उसी हेतु वा प्रयोजन के लिये विद्वान् लोग हमारी रक्षा करें ॥

प्रा०वि०—पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१२॥

ऋ० १ । ३ । १० । १५

पद०—पाहि । नः । अग्ने । रक्षसः । पाहि । धूर्तेः । अराव्णः । पाहि । । रीषत । उत । वा । जिघांसतः । बृहद्भानः । यविष्ठ्य ।

पदा०—(बृहद्भानः) हे सब से बड़े तेजस्वी (यविष्ठ्य) निरतिशय कल्याणगुणाकर (अग्ने) परमात्मन् ! (रक्षसः) हिंसाशील मनुष्यों से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा करें (अराव्णः) कृपण (धूर्तेः) धूर्त्त लोगों से (पाहि) रक्षा करें (उत) और (रीषत) पीड़ा देने वालों (वा) अथवा (जिघांसतः) पीड़ा देने की इच्छा करने वालों से (पाहि) रक्षा करें ।

व्याख्या०—हे सर्वशत्रुदाहकारण ! हिंसाशील दुष्टस्वभाव वालों से हमारी रक्षा करें और जो दान धर्म रहित वंचक पुरुष हैं अथवा पीड़ा देने वाले तथा पीड़ा देने की इच्छा करने वाले हैं उनसे भी हमारी रक्षा करें ताकि हम लोग सब प्रकार से निर्भय होकर आपकी सेवा में तत्पर रहें ॥

स्तु० वि०—त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः । चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१३॥ ऋ०१।४।१४।१२।

पद०—त्वं । अस्य । पारे । रजसः । व्योमनः । स्वभूत्योजा । अवसे । धृषन्मनः । चकृषे । भूमिं । प्रतिमानं । ओजसः । अपः । स्वः । परिभूः । एषि । आ । दिवम् ।

पदा०—हे परमात्मन् ! आप (स्वभूत्योजा) अपने बल से बलवान (धृषन्मनः) दुष्टों के मन का तिरस्कार करने वाले हैं (अस्य) इस भूलोक तथा (व्योमनः) आकाश और (रजसः) द्युलोक से (पारे) परे होकर (भूमिं) पृथिवी (आपः) अन्तरिक्ष (स्वः) स्वर्लोक तथा (दिवं) द्युलोक को (ओजसा) अपने बल का (प्रतिमानं) प्रतिनिधि (आचकृषे) भलेप्रकार बनाते हुए (परिभूः, एषि) सब में परिपूर्ण हैं ।

व्याख्या०—हे परमैश्वर्य्यवान् !आप अपने ऐश्वर्य्य तथा बल से आकाश के बाहर भीतर सर्वत्र विराजमान होकर दुष्टों के मन का

तिरस्कार करते हुए सब जगत् की रक्षा और पृथिव्यादि सब लोकों को रचकर अपने दिव्य सामर्थ्य से धारण कर रहे हैं।

प्रा० वि०—विजानीह्यार्यान् येच दस्यवो बर्हिष्मतेरन्धयाशासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ १४ ॥

ऋ० १। ४। १०। ८

पद०—विजानीहि। आर्यान्। ये। च। दस्यवः। बर्हिष्मते। रन्धि। आ। शासत्। अव्रतान्। शाकी। भव। यजमानस्य। चोदिता। विश्वेत्। ता। ते। सधमादेषु। चाकन।

पदा०—हे परमात्मन्! आप (आर्य्यान्) श्रेष्ठों को (विजानाहि) विशेष करके जानें (ये, च. दस्यवः) और जो दुष्ट हैं उनको (बर्हिष्मते) यज्ञ की रक्षा के लिये (रन्धि) वशीभूत करें (अव्रतान्) उत्तम व्रतों का भङ्ग करने वालों को (आ, शासत) भले प्रकार शासन करें (यजमानस्य) वेदविहित कर्म करने वालों को (चोदिता) शुभकर्मों में प्रेरित करते हुए (शाकी, भव) शक्ति देने वाले हों ताकि वह (ते) आपके (सधमादेषु) उत्तम राज्य में सुखपूर्वक वास करते हुए (ता) उन (विश्वेत्) आपके सब उत्तम कामों की स्तुति करें॥

व्याख्या०—हे सबको यथायोग्य फल देने वाले न्यायकारिन्! आप कृपा करके उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त मनुष्यों की रक्षा करें, जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, विषयलम्पट,

हिंसादि दोषों से युक्त, यज्ञविध्वंसक, स्वार्थी तथा वेदविरोधी हैं उनको मूलसहित नाश करके ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आदि व्रतों से रहित वेदमार्ग उच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन करें जिससे वह वेदानुकूल होकर शिष्ट बन जायं अथवा हमारे वश होकर उत्तम कामों में विघ्न डालने से रुकजायं. और आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग सदा दुष्टकर्मों से घृणित होकर सर्वहितकारक कामों में प्रवृत्त रहें ॥

स्तु० वि०--न यस्य द्यावापृथिवी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः । नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१५॥

ऋ० १ । ४ । १४ । १४

पद०—न । यस्य । द्यावापृथिवी । अनुव्यचः । न । सिन्धवः। रजसः । अन्तं । आनशुः। न । उत । स्ववृष्टिं। मदे । अस्य । युध्यतः । एकः । अन्यत् । चकृषे । विश्वं । आनुषक् ।

पदा०-(यस्य) जिस परमात्मा की (अनुव्यचः) व्याप्ति को (द्यावापृथिवी) द्युलोक पृथिवी लोक तथा (रजसः,सिन्धवः) सूक्ष्मभूतों का समूहरूप समुद्र यह सब (न, आनशुः) नहीं पाते (उत) और (स्ववृष्टिं) बड़े २ मेघ भी अपनी वृष्टि से (मदे) प्राणीमात्र को हर्षाते तथा (युध्यतः) गर्जते हुए (अस्य, अन्तं) जिसका अन्त (न) नहीं पाते वह परमात्मा (आनुषक्) सब में व्यापक होकर (एकः) अकेला ही (विश्वं) सब को (चकृषे) रचता है (न, अन्यत्) अन्य नहीं ।

व्याख्या०—हे परमैश्वर्य्य युक्त परमात्मन् ! आपकी व्याप्ति का परिमाण कोई नहीं करसक्ता, आप सब में परिपूर्ण हैं तब भी सूर्य्य, पृथिवी, मध्यलोक तथा सर्वोपरि आकाश आपके अन्त को नहीं पाते, अन्तरिक्ष में जो सूक्ष्मभूत स्थित हैं वह तथा मेघ, विजली आदि भी आपका अन्त नहीं पाते, इसलिये आप अलख अगोचर हैं, आपकी महिमा का न किसी ने अन्त पाया और न कोई पासकेगा।

प्रा० वि०—उर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकेतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा नो दुवः॥ १६॥ ऋ० १।३।१०।१४॥

पद०--उर्ध्वः। नः। पाहि। अंहसः। निकेतुना। विश्वं। सम्। अत्रिणं। दह। कृधी। न। ऊर्ध्वान्। चरथाय। जीवसे। विदा। देवेषु। नः। दुवः।

पदा०--हे परमात्मन् ! आप (नः) हमको (निकेतुना) विविध विद्या विज्ञान देकर (अंहसः) सब पापों से (पाहि) बचायें, हे सर्वोपरि ब्रह्मन् ! आप (उर्ध्वः) श्रेष्ठ हैं (नः) हमको (ऊर्ध्वान्) श्रेष्ठ बनायें तथा (विश्वं) सब (अत्रिणं) विकारों को (सं, दह) भस्मीभूत (कृधी) करें (जीवसे) सुख से जीवन व्यतीत करने और (चरथाय) आनन्दपूर्वक विचरने के लिये (देवेषु) विद्वानों में (विदा) जो उत्तम गुण हैं वह (नः) हमको (दुवः) दें॥

व्याख्या०—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्मन् ! आप सब से उत्कृष्ट हैं हमको भी उच्च बनावें, हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर ! हमको विविध विद्यादि दान देकर अविद्यादि महापापों से सदैव पृथक् रखें और इस सकल संसार का नित्य पालन कर रहें, हे स्वामिन् ! हे न्यायकारिन् ! जो कोई हम धार्मिकों से शत्रुता करता है उस को भस्मीभूत करें और विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, बल, पराक्रम, चातुर्य्य विविध धन, ऐश्वर्य्य, विनय, साम्राज्य, समिति सम्प्रीति तथा स्वदेशसुख सम्पादन आदि गुणों से युक्त करके हमको सब देहधारियों में उत्तम बनायें और सब से अधिक आनन्द-भोग करने, सब देशों में इच्छानुकूल विचरने और आरोग्य देह, शुद्ध मानुषबल तथा विज्ञानादि की प्राप्ति के लिये हमको विद्वानों के मध्य प्रतिष्ठायुक्त करें ॥

स्तु०वि०—अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १७ ॥

ऋ० १ । ६ । १६ । १०

पद०—अदितिः । द्यौः । अदितिः । अन्तरिक्षं । अदितिः । माता । सः । पिता । सः । पुत्रः । विश्वेदेवाः । अदितिः । पंचजनाः । अदितिः । जातं । अदितिः । जनित्वं ।

पदा०—(अदितिः) परमात्मा (द्यौः) द्युलोक (अदितिः) परमात्मा (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अदितिः) परमात्मा (माता)

पृथिवी (सः, पिता) वही वायु (सः, पुत्रः) वही जल (विश्वेदेवाः) तथा वही तेजादि सब प्रकाशमान पदार्थ है (अदितिः, पंचजनाः) परमात्मा पांच प्राण (अदितिः,जातं) परमात्मा ही सब वर्त्तमान पदार्थ और(अदितिः,जनित्वं) उत्पन्न होने वाले सब पदार्थ भी परमात्मा ही है।

व्याख्या०—इस मन्त्र में जो परमात्मा को द्युलोकादि कथन कियागया है इसका तात्पर्य्य यह है कि वही सब का जीवन दाता, आधार तथा सत्ताप्रद है, उसकी सत्ता के विना कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहसक्ता।

स्वामी जी ने इसका यः अर्थ किया है कि हे त्रिकालाबाध्येश्वर ! (अदितिर्द्यौः) आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाश स्वरूप हो (अदितिरन्तरिक्षं) आप अविकृत=विकार रहित और सब के अधिष्ठाता हो (अदितिर्माता) आप मोक्षप्राप्त जीवों को अविनश्वर = विनाश रहित सुख देने वाले तथा मुक्तों का मान करने वाले हो (स, पिता) सो आप अविनाशी स्वरूप हम सब जीवों के पिता = जनक और पालक हो और (स पुत्रः) सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण = रक्षण करने वाले हो (विश्वेदेवाः, अदितिः) सब दिव्य गुण = विश्व का रचन, धारण, पालन मारण, आदि कार्य्यों को करने वाले आप अविनाशी परमात्मा ही हैं (पंचजना अदितिः) पांचप्राण जो जगत् के जीवन हेतु वह भी आपके रचे और आप के नाम भी हैं (जातमदितिः) वही एक चेतन ब्रह्म ही सदा प्रादुर्भूत है अन्य सब पदार्थ कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत=

विनाशभूत भी होजाते हैं (अदितिर्जनित्वं) वही अविनाशी स्वरूप ईश्वर आप ही सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु है और कोई नहीं ॥

प्रा० वि०—ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १८ ॥

ऋ० १ । ६ । १७ । १

पद०—ऋजुनीती । नः । वरुणः । मित्रः । नयतु । विद्वान् । अर्यमा । देवैः । सजोषाः ।

पदा०—(वरुणः) सर्वोत्कृष्ट (मित्रः) सर्वहितकारी (विद्वान्) त्रिकालदर्शी (अर्यमा) न्यायकारी (देवैः, सजोषाः) विद्वानों के साथ प्रेम करने वाला परमात्मा (नः) हमको (ऋजुनीती) सरलनीति से (नयतु) चलावे ।

व्याख्या०—हे महाराजाधिराज ! आप हमको सरलशुद्ध नीति प्राप्त करायें, आप सर्वोत्कृष्ट हैं हमको श्रेष्ठ विद्या और श्रेष्ठराज्य प्रदान करें, आप सब के मित्र हैं हमको भी सबका शुभचिन्तक बनायें, आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हैं हमको सत्यविद्या से युक्त करें, आप यमराज हैं अर्थात् प्रियाप्रिय का ध्यान छोड़ विचारपूर्वक संसारस्थ जीवों के पाप पुण्य की व्यवस्था करने वाले हैं हमको तत्सदृश बनायें, जिससे हम विद्वानों तथा दिव्य गुणों के साथ प्रीति करने वाले होकर आप में रमण कर सकें और आपकी सेवा में सदा तत्पर रहें, हे कृपासिन्धो भगवन् !

आप हमारी सदा सहायता करते रहें जिससे हम सुनीतियुक्त होकर सुख से जीवन व्यतीत कर सकें ॥

स्तु० वि०—त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १९ ॥ ऋ० १। ६। १९। ५

पद०—त्वं। सोम। असि। सत्पतिः। त्वं। राजा। उत। वृत्रहा। त्वं। भद्रः। असि। क्रतुः।

पदा०—(सोम) हे शान्तस्वरूप ! (त्वं, सत्पतिः, असि) तुम सच्चे पालक हो (त्वं, राजा) तुम सर्वनियन्ता और (वृत्रहा) अज्ञानरूप शत्रु के नाशक हो (त्वं, भद्रः) आप कल्याणस्वरूप (उत) और (क्रतुः, असि) जगत्कर्त्ता हो ॥

व्याख्या०—हे सत्पति परमात्मन् ! आप ही सब के सारभूत शान्तात्मा हैं, आप सर्वनियन्ता तथा अज्ञान के नाशक हैं और आप ही सब के कर्त्ता हर्त्ता तथा पालन करने वाले हैं।

प्रा० वि०—त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः। न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥२०॥ ऋ० १।६।२०।८

पद०—त्वं। नः। सोम। विश्वतः। रक्ष। राजन्। अघायतः। न। रिष्येत्। त्वावतः। सखा।

पदा०—(सोम, राजन्) हे शान्तस्वरूप सर्वरक्षक परमात्मन् ! (त्वं) आप (विश्वतः, अघायतः) सब पापियों से (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा करें (त्वावतः) आप जैसे का

(सखा) सखा (न, रिष्येत्) कभी दुःखी नहीं होसक्ता ।

व्याख्या०—हे शान्तस्वरूप सर्वस्वामिन् ! आप सब प्रकार के पापियों से हमारी रक्षा करें, और हम सबको आपके साथ मित्रता करनी चाहिये, क्योंकि आपका मित्र कभी दुःखित वा भयभीत नहीं होता ॥

स्तु० वि०—तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १।२।७।२०

पद०—तत् । विष्णोः । परमं । पदं । सदा । पश्यन्ति । सूरयः । दिवि । इव । चक्षुः । आततम् ॥

पदा०—(सूरयः) विद्वान् लोग (दिवि) प्रकाश में (आततं) फैले हुए (चक्षुः, इव) नेत्रों की भांति (विष्णोः) सर्वव्यापक परमात्मा के (तत्) उस (परमं, पदं) परमस्वरूप को (सदा) नित्य (पश्यन्ति) देखते हैं ।

व्याख्या०—जिसप्रकार मनुष्य सूर्य्य के प्रकाश में नेत्रों द्वारा इस अनन्त ब्रह्माण्ड का अनुभव करता है इसी प्रकार योगी जन समाधि अवस्था में योगविद्या द्वारा परमात्मा के अनन्तस्वरूप का दर्शन करते हैं ।

आशीर्वाद वि०—स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे । युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा

मर्त्यस्यमायिनः ॥ २२ ॥ ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

पद०—स्थिरा । वः । सन्तु । आयुधा । पराणुदे । वीळू । उत । प्रतिष्कभे । युष्माकं । अस्तु । तविषी । पनीयसी । मा । मर्त्यस्य । मायिनः ।

पदा०—हे धार्मिक राजाओ ! वह तुम्हारे (आयुधा) भलेप्रकार युद्ध करने के साधनरूप शस्त्रास्त्र (पराणुदे) शत्रुओं को परास्त करने (उत) और (प्रतिष्कभे) रोकने के लिये (स्थिरा, वीळू) स्थिर और दृढ़ (सन्तु) हों, और (युष्माकं) तुम्हारा सेनारूप बल (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) हो (मायिनः) अन्यायकारी अधर्मी मनुष्यों का (मा) न हो ।

व्याख्या०—ईश्वर धार्मिक राजाओं को आशीर्वाद देता है कि तुम्हारे अग्नि आदि के संयोग से चलने वाले शतघ्नी = तोप और भुशुण्डी = बन्दूक आदि आग्नेयादि अस्त्र और अग्नि आदि के संयोग बिना ही शरीर बल से चलने वाले धनुष बाण, करवाल = तलवार, शक्ति = बरछी आदि शस्त्र शत्रुओं को परास्त करने तथा रोकने के लिये स्थिर और दृढ़ होकर तुम्हारी सेना प्रशंसनीय हो और अन्यायकारी अधर्मी पुरुषों की न हो जिससे दुष्ट लोग धार्मिकप्रजा को दुःख न देसकें ॥

स्तु० वि०—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रता-नि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३ ॥

ऋ० १ । २ । ७ । १९

पद०—विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि । पस्पशे । इन्द्रस्य । युज्यः । सखा ।

पदा०—हे मनुष्यो ! तुम लोग (विष्णोः) उस सर्वव्यापक परमात्मा के (कर्माणि) वेदविद्या प्रकाशरूप कर्म को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मों की (पस्पशे) शिक्षा मिलती है वही परमात्मा (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (युज्यः) योग्य (सखा) मित्र है।

व्याख्या०—हे मनुष्यो ! जो सर्वव्यापक परमात्मा इस विविध जगत् का कर्त्ता हर्त्ता है वही सबका पालक और मित्र है उसी से वेदों द्वारा अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्य्यन्त यज्ञों की शिक्षा मिलती है ॥

प्रा० वि०—पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसु कृधि । अस्माकं बोध्यविता महाधने भव वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥ ऋ० ५ । ३ । २१ । २५

पद०—पराणुदस्व । मघवन् । अमित्रान् । सुवेदाः । नः । वसु । कृधि । अस्माकं । बोधि । अविता । महाधने । भव । वृधः । सखीनाम् ।

पदा०—(मघवन्) हे भगवन् ! (नः) हमारे (अमित्रान्) कामक्रोधादि शत्रुओं को (पराणुदस्व) परास्त कर (वसु) सब उत्तम धन (नः) हमारे लिये (सुवेदाः) सुलभ करो और (महाधने) धर्म के संग्राम में (बोधि) अपना जानकर

(अस्माकं) हमारे तथा (सखीनां) सखाओं के (अविता) रक्षक और (वृधः) वर्द्धक (भव) होओ ।

व्याख्या०—हे परमपिता परमात्मन् ! आपसे सविनय प्रार्थना है कि आप हमारे सब प्रकार के शत्रुओं का संहार करके हमको अभय दान दें, सदा नीरोग रखकर धनधान्य से पूरित करें और सब प्रकार का ऐश्वर्य्य देकर हमारी तथा हमारे मित्रों की रक्षा करते रहें ॥

प्रा० वि०—शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२५॥

ऋ० ५ । ३ । २८ । २

पद०—शं । नः । भगः । शं । उ । नः । शंसः । अस्तु । शं । नः । पुरन्धिः । शं । उ । सन्तु । रायः । शं । नः । सत्यस्य । सुयमस्य । शंसः । शं । नः । अर्यमा । पुरु-जातः । अस्तु ।

पदा०—(भगः) भगवान् (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हों (उ) और (शंसः) प्रशंसनीय परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी (अस्तु) हों (उ) और (पुरन्धिः) जगदाधार परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी (सन्तु) हों (रायः) सम्पूर्ण धनों के भण्डार परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी हों । (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (सुयमस्य) यम नियम

के (शंसः) उपदेष्टा (अर्य्यमा) न्यायकारी और (पुरूजातः) सर्वत्र प्रकट परमात्मा (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी (अस्तु) हो ।

व्याख्या०—हे न्यायकारी ईश्वर ! आपका दिया हुआ ऐश्वर्य्य हमारे लिये सुखकारक हो और आपकी दीहुई प्रशंसा हमारे लिये सदैव सुखकारी हो, संसार का धारण करने वाला आकाश, वायु, प्राण तथा धन यह सब आनन्ददायक हों, सत्यधर्म, सुनियम और यह प्रशंसनीय गुण जो संसार में प्रसिद्ध हैं हमारे लिये शान्तिदायक हों और जो आप अनन्तसामर्थ्ययुक्त तथा सर्वत्र प्रकट हैं आप भी हमारे लिये काल्याणकारी हों ॥

स्तु० वि०—त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य ।
अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥ ऋ०५।८।३५।२

पद०—त्वं । असि । प्रशस्यः । विदथेषु । सहन्त्य । अग्ने । रथीः । अध्वराणां ।

पदा०—(अग्ने) हे सर्वगत परमात्मन् ! (त्वं) आप (विदथेषु) यज्ञों में (प्रशस्यः) प्रशंसनीय (सहन्त्य) दुष्टों के घातक और (अध्वराणां) यज्ञकर्त्ताओं के (रथीः) रक्षक (असि) हैं ।

व्याख्या०—हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आपही सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं अन्य नहीं, और आप ही यज्ञ में स्तोतव्य हैं, जो तुम्हें छोड़कर अन्य जड़ वा चेतन की स्तुति करता है उसका यज्ञ कभी सिद्ध नहीं होता, आपही शत्रुसमूह के घातक और यज्ञ के सिद्ध करने वाले हैं ॥

प्रा०वि०—तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त। शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२७॥ ऋ०५।३।२७।२५

पद०—तत्। नः। इन्द्रः। वरुणः। मित्रः। अग्निः। आपः। ओषधीः। वनिनः। जुषन्त। शर्मन्। स्याम। मरुतां। उपस्थे। यूयं। पात। स्वस्तिभिः। सदा। नः।

पदा०—(तत्) वह परमात्मा ऐसी कृपा करें कि (इन्द्रः) सूर्य्य (वरुणः) चन्द्रमा (मित्रः) वायु (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (ओषधीः) अन्न और (वनिनः) बनस्पति यह सब (नः) हमारे लिये (जुषन्त) सुखकारी हों (मरुतां) विद्वानों के (उपस्थे) संग से (शर्मन्, स्याम) हम सुखी रहें और (यूयं) आप (सदा) नित्य (स्वस्तिभिः) कल्याण प्रापक साधनों द्वारा (नः) हमारी (पात) रक्षा करें।

व्याख्या०—हे भगवन्! सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, ओषधी और वृक्षादि सब बनस्थ पदार्थ आपकी आज्ञा से सुख रूप होकर हमारा सदा सेवन करें, हे रक्षक! प्राणादि पवनों की गोद में बैठे हुए हम लोग आपकी कृपा से सदा सुखी रहें और आप सब प्रकार से हमारी रक्षा करते रहें॥

स्तु०वि०—ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा। इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥२८॥ ऋ० ५।८।१७।४१

पद०—ऋषिः। हि। पूर्वजस्य। एकः। ईशानः। ओजसा। इन्द्र। चोष्कूयसे। वसु।

पदा०—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! आप (हि) निश्चयकरके (ऋषिः) सर्वज्ञ (पूर्वजः) आदि कारण तथा (अस्य) इस लोक के (एकः) अद्वितीय (ईशानः) स्वामी होने से (वसु) सब धनों को (ओजसा) उत्साहपूर्वक (चोष्कूयसे) देने वाले हैं।

व्याख्या०—हे ईश्वर ! आप सर्वज्ञ, सब जगत् के आदि कारण, अद्वितीय स्वामी तथा सब उत्तम धनों के दाता हैं और आप ही अपने सेवकों पर कृपादृष्टि रखने वाले हैं ॥

प्रा०वि०—नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत । गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ॥ २९ ॥ ऋ० ६।४।९।१२

पद०— न । इह । भद्रं । रक्षस्विने । न । अवडयै । न । उपडयै । उत । गवे । च । भद्रं । धेनवे । वीराय । च । श्रवस्यते । अनेहसः । वः । ऊतयः । सुऽऊतयः । वः । ऊतयः ।

पदा०—हे न्यायकारिन् ! (इह) इस जगत् में (रक्षस्विने) राक्षसों के लिये (भद्रं) सुख (न) न हो (उत) और (न, अवडयै) हमारे शत्रुओं (च) तथा (उपडयै) प्रति पक्षियों के लिये भी सुख न हो किन्तु (धेनवे) दूध देने वाली गौओं तथा (गवे) बैल आदि लाभकारी पशुओं, (श्रवस्यते) हमारी रक्षा करने वाले (वीराय) वीरपुरुषों के लिये (भद्रं) सुख हो (वः, ऊतयः) आपकी रक्षायें (अनेहसः) निरुपद्रव हों और (वः,ऊतयः) आप की रक्षायें (सुऽऊतयः) उत्तम रक्षायें हों ।

व्याख्या०—हे भगवन् ! पापी हिंसक तथा दुष्टात्माओं को इस संसार में कभी सुख न हो, धर्म से विरुद्ध चलने वालों तथा उनके सहायकों को भी कभी सुख न हो, धर्मप्रिय तथा देश हितैषी वीर पुरुषों को विद्या विज्ञान द्वारा स्थिरसुख प्राप्त हो और दूध देने वाले तथा अन्य प्रकार से लाभ पहुंचाने वाले पशुओं को भी आप सुखी रखें ॥

प्रा० वि०—वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥ ऋ० ६ । ३ । ४० । २४

पद०—वसुः । वसुऽपतिः । हि । कं । असि । अग्ने । विभावसुः । स्याम । ते । सुऽमतौ । अपि ।

पदा०—(अग्ने) हे परमात्मन् ! आप (वसुः,असि) सब के वास दाता और (हि) निश्चयकरके (वसुऽपतिः) सब वास स्थानों के नायक=स्वामी(कं)सुखस्वरूप हैं, सो आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग सदा (ते) आपकी (सुऽमतौ) शुभ आज्ञा में (स्याम) स्थिर रहें ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप सबको अपने में वसाने वाले तथा सब में वसने वाले हो, पृथिवी आदि भूत जो वास के हेतु हैं उन सब के आपही पति हैं, हे विज्ञानानन्दस्वप्रकाशस्वरूप ! आपही सुखकारक, सुखदाता और सत्य प्रकाशक हैं, हे भगवन् ! ऐसी कृपा करें कि हम लोग सदा आपही की आज्ञा में स्थिर रहें॥

उप० वि०—वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे

वैश्वानरो यतते सूर्य्येण ॥३१॥ ऋ० १।७।६।१

पद०—वैश्वानरस्य । सुऽमतौ । स्याम । राजा । हि । कं । भुवनानां । अभिऽश्रीः । इतः । जातः । विश्वं । इदं । वि । चष्टे । वैश्वानरः । यतते । सूर्य्येण ।

पदा०—हे मनुष्यो ! (हि) निश्चयकरके हम सब (वैश्वानरस्य) उस सम्पूर्ण जगत् के नेता की (सुऽमतौ) शुभ आज्ञा में (स्याम) स्थिर रहें जो (कं) सुखस्वरूप (भुवनानां, राजा) सब लोक लोकान्तरों का रक्षक (अभिऽश्रीः) सबका सेवनीय (वैश्वानरः) सब का स्वामी और (सूर्य्येण) सूर्य्य के द्वारा (यतते) सब का चालक है (इतः) उसी के अद्भुत सामर्थ्य से (इदं) यह (विश्वं) जगत् (जातः) उत्पन्न होकर (वि, चष्टे) भलेप्रकार दृष्टिगोचर होता है।

व्याख्या०—हे मनुष्यो ! जो हम सबका नियन्ता, सब भुवनों का स्वामी, सबका सुखदाता तथा शोभाकारक है वही संसारस्थ सब नरों का नेता=नायक तथा सूर्य्य का प्रकाशक है और उसी के सामर्थ्य से इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होती है, ऐसे परमात्मा की शुभ आज्ञा में हम सदा रहें॥

प्रा०वि०—न यस्य देवा देवता न मर्त्ता आपश्च न शवसो अन्तमापुः। स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३२॥ ऋ० १।७।१०।१५

पद०—न । यस्य । देवाः । देवता । न । मर्त्ताः । आपः । चन । शवसः । अन्तं । आपुः । सः । प्रऽरिक्वा । त्वक्षसा । क्ष्मः । दिवः । च । मरुत्वान् । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ।

पदा०—(यस्य) जिस परमात्मा के (शवसः) बल का (अन्तं) अन्त (देवाः) इन्द्रियां (देवताः) विद्वान् लोग (च) और (मर्त्ता) साधारण मनुष्य तथा (आपः) अन्तरिक्षादि सब लोकलोकान्तर (चन) भी (न,आपुः) नहीं पाते, जो परमात्मा, अनन्त सामर्थ्यवान् तथा ऐश्वर्य्ययुक्त है और जो (त्वक्षसा) अपने सामर्थ्य से (क्ष्मः) पृथिवी (च) और (दिवः) सूर्य्यादि दिव्य लोकों को रचकर (प्रऽरिक्वा) उनमें व्याप्त होकर बढ़ रहा है (सः) वह परमात्मा (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये (भवतु) तत्पर हो।

व्याख्या०—हे अनन्त बलस्वरूप परमात्मन् ! विद्वान् तथा साधारण मनुष्य और जल तथा प्राणवायु इत्यादि सभी पदार्थ आपके सामर्थ्य का अन्त नहीं पाते, आप उनमें प्रकृष्टता से व्याप्त होकर भी उनसे पृथक् रहते हुए बाहर भीतर सर्वत्र परिपूर्ण हैं, पृथिवी आदि प्रकाशरहित तथा सूर्य्यादि प्रकाशमान् लोकों को आपही अपने सामर्थ्य से धारण कर रहे हैं, हे परमात्मन् ! आप हमारी रक्षा के लिये सदा उद्यत रहें ॥

स्तु० वि०—जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥३३॥ ऋ० १।७।७।१

पद०—जातवेदसे। सुनवाम। सोमं। अरातीऽयतः। नि। दहाति। वेदः। सः। नः। पर्षत्। अति। दुःऽगाणि। विश्वा। नावा। इव। सिन्धुं। दुःऽइरिता। अति। अग्निः।

पदा०—(जातवेदसे) सब जगत् के ज्ञाता परमात्मा के लिये (सोमं) श्रद्धा भक्ति आदि उत्तम पदार्थ (सुनवाम) हम समर्पण करते हैं (सः) वह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (अरातीयतः, वेदः) दुष्टों के धन को (नि,दहाति) नष्ट करता और (सिन्धुं) समुद्र से (नावा) नौका द्वारा (अति) पार करने के समान (नः) हम लोगों को (अति, दुर्गाणि) अत्यन्त दुर्मति और (विश्वा) समस्त (अति, दुरिता) महा दुःखों से (पर्षत्) पार करता है ॥

व्याख्या०—हे जातवेद परब्रह्मन् ! आप सब वर्त्तमान् जगत् को जानने वाले, सर्वत्र प्राप्त, विद्वानों से जानने योग्य और सब में विद्यमान हैं, हम श्रद्धा भक्ति से आपकी सेवा करते हुए प्रार्थना करते हैं कि आप कृपाकरके धर्मात्माओं के विरोधि दुष्ट पुरुषों के धनादि को सर्वथा नष्ट करें ताकि दुष्ट लोग अपनी दुष्टता को छोड़कर श्रेष्ठता को स्वीकार करें, और हम वैदिकधर्मियों को आप सम्पूर्ण दुःखों से छुड़ाकर सुख प्राप्त करायें, जैसे अति कठिन समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है वैसे ही आपका वैदिक ज्ञान इस संसाररूप समुद्र से पार होने के लिये नौका रूप है ॥

प्रा० वि०—स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा । चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३४॥ ऋ०१।७।१०।१२

पद०—सः । वज्रभृत् । दस्युहा । भीमः । उग्रः । सहस्रचेताः । शतनीथ । ऋभ्वा । चम्रीषः । न । शवसा । पाञ्चजन्यः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ।

पदा०—(वज्रभृत्) जो परमात्मा न्यायरूप वज्र को धारण करता हुआ (दस्युहा) दुष्टों का हनन करने वाला (भीमः) पापियों के लिये भयंकर और (उग्रः) अति कठिन दण्ड देने वाला (सहस्रचेताः) अनन्त ज्ञान का प्रगट करने वाला (शत-नीथ) अनन्त पदार्थों की प्राप्ति कराने वाला (ऋभ्वा) अत्यन्त प्रकाशवान् (न, चर्म्रीषः) किसी से परास्त न होने वाला (शवसा) अपने ही सामर्थ्य से (पाञ्चजन्यः) पांच प्राणों का रचने वाला (मरुत्वान्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् होकर विविध वायुओं का उत्पादक और (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त है (सः) वह जगदीश्वर (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये (भवतु) उद्यत हो।

व्याख्या०—हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप अपने न्याय रूप वज्र से दुष्टों को भयानक और तीव्र दण्ड देने वाले हैं, हे अनन्त विद्या विज्ञान के प्रकाशक और असंख्यात पदार्थों के दाता ! आप अपने ही सामर्थ्य से प्राण आदि विविधि वायुओं के उत्पादक और अत्यन्त सामर्थ्य युक्त हैं, अतएव आपसे प्रार्थना है कि आप हमारी सब प्रकार से रक्षा करें॥

प्रा० वि०—सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः श-तक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥३५॥ ऋ०१।१।३१।९

पद०—सः। इमं। नः। कामं। आ। पृण। गोभिः। अश्वैः। शतऽक्रतो। स्तवाम। त्वा। सुऽआध्यः।

पदा०—(शतऽक्रतो) हे अनन्तसामर्थ्य ! (सः) वह आप

(गोभिः) दूध देने वाले गौ आदि और (अश्वैः) शीघ्रगामी घोड़े आदि पशुओं से (नः) हमारी (इमं) हार्दिक (कामं) कामना को (आ,पृण) भले प्रकार पूर्ण करें, (सुऽआध्यः) वेदशास्त्र को प्रतिदिन पढ़ते हुए हम आप की (स्तवाम) स्तुति करते रहें।

व्याख्या०—हे अनन्त क्रियेश्वर! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य=प्राप्त होने योग्य-तथा अनन्त क्रियाओं से युक्त हैं, आप कृपाकरके गौ तथा घोड़े आदि पशुओं से हमारी यथार्थ कामनाओं को पूर्ण करें और हम लोग स्वाध्याय युक्त होकर आपका नित्य ही स्तवन-गुणगान-करते रहें॥

प्रा० वि०—सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः। सुमृळीको न आविश॥३६॥ ऋ० १।८।२१।११

पद०—सोम। गीर्भिः। त्वा। वयं। वर्द्धयामः। वचःऽविदः। सुऽमृळीकः। नः। आ। विश।

पदा०—(सोम) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन्! (वचःऽविदः, वयं) वेदवेत्ता हम लोग (गीर्भिः) पवित्र वाणियों से (त्वा) आपकी (वर्द्धयामः) स्तुति करते हैं ताकि(सु,मृळीकः) उत्तम सुखों के देने वाले आप (नः) हमको (आविश) भले प्रकार प्राप्त हों।

व्याख्या०—हे सर्व जगत् उत्पादक ईश्वर! वेदशास्त्रवित् हम लोग वेदमंत्रों से आपकी स्तुति करते हैं, उत्तम सुखों के देने वाले केवल आप ही हैं, आप हमको प्राप्त हों, जिससे हमलोग अविद्यान्धकार से निकलकर विद्यारूप प्रकाश को प्राप्त हों॥

प्रा० वि०—सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥३७॥ ऋ० १।६।२१।१।३

पद०—सोम । रारन्धि । नः । हृदि । गावः । न । यवसेषु । आ । मर्य । इव । स्वे । ओक्ये ।

पदा०—(सोम) हे परमात्मन् ! (न) जैसे (गावः) गौयें (यवसेषु) हरी २ घास में और (इव) जैसे (मर्य) मनुष्य (स्वे, ओक्ये) अपने २ घरों में रमण करते हैं वैसे ही आप (नः) हमारे (हृदि) हृदय में (आ, रारन्धि) सब ओर से रमण करें ॥

व्याख्या०—हे सौख्यप्रदेश्वर=सुखदायक पदार्थों के ईश्वर! जैसे गौ आदि पशु हरी२ घास में अथवा इन्द्रियां अपने२ विषयों में तथा मनुष्य अपने २ घरों में रमण करते हैं वैसे ही आप कृपा करके हमारे हृदय में निवास करें जिससे हम यथार्थज्ञान पाकर आनन्दित हों ॥

प्रा० वि०—गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥३८॥ ऋ० १।६।२१।१।२

पद०—गयऽस्फानः । अमीवऽहा । वसुऽवित् । पुष्टिऽवर्द्धनः । सुऽमित्रः । सोम । नः । भव ।

पदा०—(सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न ! आप (नः) हमारे लिये (गयऽस्फानः) ज्ञान के बढ़ाने वाले (अमीवऽहा) रोगनाशक (वसुऽवित) विद्यादि उत्तम गुणों के दाता (पुष्टिऽवर्द्धनः) क्रिया शक्ति के बढ़ाने वाले (सुऽमित्रः) हितकारी (भव) हों ।

व्याख्या०—हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना जो इष्टदेव प्रजा और धन का दाता और स्वराज्य का बढ़ाने वाला तथा शारीरिक मानसिक रोगों का विनाश करने वाला, पृथिवी आदि सब वस्तुओं का जानने वाला अथवा विद्यादि उत्तम धनों का देने वाला, शरीर, इन्द्रिय मन और आत्मा को पुष्ट करने वाला सब का परममित्र है उसी से आओ हम सब मिलकर यह वर मांगें कि वह कृपाकरके हमारा मित्र हो और हम सब के मित्र बनें ॥

प्रा०वि०—त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३९ ॥ ऋ० १ । ७ । ५ । ६.

पद०—त्वं । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि । अप । नः । शोशुचत् । अघम् ।

पदा०—(विश्वतःऽमुख) हे सर्वद्रष्टा ! (त्वं, हि) आप ही (विश्वतः) सब जगत् में (परिऽभूः, असि) परिपूर्ण हैं (नः) हमारे (अघं) पापों को (अप, शोशुचत्) सर्वथा दूर करें ।

व्याख्या०—हे अग्ने परमात्मन् ! आप ही सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, इसलिये आपका नाम विश्वतोमुख है, हे सर्वतो मुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्य का प्रकाश करने वाले हैं, हे कृपालो ! आप हमारे सब पापों को नष्ट करें ताकि हम निर्भय होकर आपकी भक्ति तथा आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ॥

प्रा० वि०—तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरी-राहुतमृञ्जसानम् । ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥४०॥ऋ०१।७।३।३

पद०—तं । ईडत । प्रथमं । यज्ञऽसाधं । विशः । आरीः । आहुतं । ऋञ्जसानं । ऊर्जः । पुत्रं । भरतं । सृप्रऽदानुं । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदाम् ।

पदा०—(विशः) हे मनुष्यो ! (तं) उस परमात्मा की (ईडत) स्तुति करो जो (प्रथमं) आदिकारण (यज्ञऽसाधं) वेदविहित कर्मों से प्राप्त होने योग्य (आरीः) सर्व स्वामी (आहुतं) पूजनीय है, और जिसको (देवाः) विद्वान् लोग (अग्निं) प्रकाश का देने वाला (ऋञ्जसानं) नम्रता का दाता (ऊर्जः, पुत्रं) जगत् का दुःख हर्त्ता तथा (भरतं) धारण पोषण करता (सृप्रऽदानुं) सब जगत् को ज्ञान तथा क्रियाशक्ति का देने वाला और(द्रविणःऽदाम्) उत्तम पदार्थों का दाता (धारयन्) मानते हैं ।

व्याख्या०—जो परमात्मा सब जगत् का आदिकारण, वेदविहित कर्मों से प्राप्त होने योग्य, सबका अधिष्ठाता तथा पूजनीय है और जिसको विद्वान् लोग प्रकाश तथा नम्रता का देने वाला, जगत् का दुःख हर्त्ता, धारण पोषण कर्त्ता, ज्ञान तथा क्रियाशक्ति आदि उत्तम पदार्थों का देने वाला मानते हैं उसी की सबको स्तुति करनी चाहिये अन्य की नहीं ॥

प्रा० वि०—तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् । स विश्वस्य करुणस्येशएको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४१॥ ऋ०१।७।९।७ ॥

पद०—तं । ऊतयः । रणयन् । शूरऽसातौ । तं । क्षेमस्य । क्षितयः । कृण्वत । त्राम् । सः । विश्वस्य । करुणस्य । ईशः । एकः । मरुत्वान । नः । भवतु । इन्द्रः । ऊती ।

पदा०—जिस परमात्मा की योद्धा लोग (शूरऽसातौ) संग्राम में (ऊतयः) अपनी रक्षा के लिये (रणयन्) स्तुति प्रार्थना करते हैं (तं) उस परमात्मा को (क्षितयः) मनुष्य लोग (क्षेमस्य) रक्षणीय धन का (त्राम्) रक्षा करने वाला (कृण्वत) मानें (सः) वह परमात्मा (विश्वस्य) सर्वप्रकार के (करुणस्य) इष्ट फलों का (एकः) अद्वितीय (ईशः) स्वामी है, ऐसा (मरुत्वान्) बलवान् तथा (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये (भवतु) उद्यत हो ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! हम लोग पापी दुष्ट पुरुषों के साथ युद्ध करने के लिये जाते हुए आपका चिन्तन करते हैं, आप सब प्रकार की कुशलता करने वाले और अपने सेवकों के रक्षक हैं और आप ही सर्वैश्वर्य्यवान् तथा सब इष्टफलों के दाता हैं कृपाकरके हमारी सेना के रक्षक हों जिससे आपकी आज्ञा के विरोधिजन किसी प्रकार भी हमारी हानि न करसकें किन्तु हम उनको जीतकर अत्याचार से रोकसकें ॥

स्तु० वि०—स पूर्व्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् । विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥४२॥ ऋ० १।७।३।२

पद०—सः । पूर्व्वया । निविदा । कव्यता । आयोः । इमाः । प्रजाः । अजनयत् । मनूनां । विवस्वता । चक्षसा । द्यां । अपः । च । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदाम् ।

पदा०—(सः) वह (पूर्व्वया) सनातन (निविदा) प्रकाशस्वरूप (कव्यता) कवितादि गुणों का प्रकाशक परमात्मा (आयोः) प्रकृतिरूप कारण से (इमाः) इस प्रत्यक्ष (मनूनां, प्रजाः) मनुष्य समूह को (विवस्वता) पशुपक्षी आदिकों को (द्यां) द्युलोक को (आपः) अन्तरिक्ष लोक को (च) पृथिवी लोक को (अजनयत) रचता है, ऐसे परमात्मा को (देवाः) विद्वान् लोग (अग्निं) ज्ञानस्वरूप और (द्रविणःऽदां) सब पदार्थों का दाता मानते हुए (चक्षसा) निर्मल बुद्धि से (धारयन्) धारण करते हैं।

व्याख्या०—वह पूर्ण सनातन परमात्मा जो कवितादि गुणों का प्रकाश करने वाला और प्रकृति द्वारा सम्पूर्ण प्रजा को रचने वाला है उसी परमात्मा को विद्वान् लोग संस्कृत बुद्धि से धारण करते हैं॥

प्रा० वि०—वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमशमुदवा भरे भरे । अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुजः ॥ ४३ ॥ ऋ० १।८।१।७।१

पद०— वयं । जयेम । त्वया । युजा । वृतं । अस्माकं । अंशं । उत् । अव । आ । भरे । भरे । अस्मभ्यं । इन्द्र । वरिवः । सुगं । कृधि । प्र । शत्रूणां । मघवन् । वृष्ण्या । रुज ।

पदा०—(इन्द्र) हे ऐश्वर्य्यवान् परमात्मन् ! (वयं) हम लोग (त्वया) आपकी (युजा) सहायता से (वृतं) पापों को (आ, जयेम) भले प्रकार जीतें (उत्) और आप (अस्माकं) हमारे (अंशं) सात्विकभाव की (भरे, भरे) निरन्तर (अव) रक्षा करें (मघवन्) हे भगवन् ! (शत्रूणां) राग द्वेषादि शत्रुओंकी (वृष्ण्या) शक्ति को (प्र, रुज) सर्वथा नष्ट करें (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वरिवः) वाञ्छित फल की प्राप्ति को (सुगं,कृधि) सुगम करें ।

व्याख्या०—हे इन्द्र परमात्मन् ! ऐसी कृपा करो कि हम लोग सब दुष्टभावों को आपकी सहायता से जीतें, हे महाराजाधिराज! कृपाकरके दुष्टजनों के परिहार से भले प्रकार हमारी रक्षा करें, हे महाधनेश्वर ! हमारे शत्रुओं के बल पराक्रम को सर्वथा नष्ट करें और आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥

स्तु० वि०—यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् । इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४४ ॥

ऋ० १ । ७ । १२ । ५

पद०—यः । विश्वस्य । जगतः । प्राणतः । पतिः । यः । ब्रह्मणे । प्रथमः । गाः । अविन्दत् । इन्द्रः । यः । दस्यून् । अधरान् । अवातिरत् । मरुत्वन्तं । सख्याय । हवामहे ।

पदा०—(यः) जो (इन्द्रः) परमात्मा (विश्वस्य) सब (जगतः, प्राणतः) चराचर जगत् का (पतिः) स्वामी है (यः) जो (प्रथमः) सृष्टि के आदि में (ब्रह्मणे) ब्राह्मण आदि मनुष्यों के लिये (गाः) वेदरूप वाणी (अविन्दत) देता है और (यः) जो (दस्यून्) दुष्ट लोगों को (अधरान्) नीचे गिराता तथा (अवातिरत) अधोगति को पहुंचाता है उस (मरुत्वन्तं) अनन्त सामर्थ्यवान् परमात्मा को (सख्याय) मित्र बनाने के लिये हम (हवामहे) श्रद्धापूर्वक बुलाते हैं ।

व्याख्या०—जो परमात्मा परमैश्वर्य्यवान्, सब चराचर जगत् का स्वामी, आदिसृष्टि में वैदिक ज्ञान का दाता और दुष्टों को दण्ड देने वाला है उसी परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये अन्य की नहीं ॥

प्रा० वि०—मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते । यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ४५ ॥

ऋ० १ । ८ । ५ । २

पद०—मृड । आ । नः । रुद्र । उत । नः । मयः । कृधि । क्षयद्ऽवीराय । नमसा । विधेम । ते । यत् । शं । च । योः । च । मनुः । आ । येजे । पिता । तत् । अश्याम । तव । रुद्र । प्रऽनीतिषु ।

पदा०—(रुद्र) हे न्यायकारिन्! आप (नः) हमारे लिये (मृड) सुखकारी हों (उत) और (नः) हमको (मयः,कृधि) सुखी करें, हे रुद्र ! (क्षयद्वीराय,ते) दुष्टों के हन्ता आपकी हम (नमसा) श्रद्धाभक्ति आदि उत्तम पदार्थों से (विधेम) सेवा करें (च) और (यत्) जो (शं) सुख (च) तथा (योः) दुःख से छूटने का उपाय (मनुः, पिता) मनुष्यों का पिता अपनी सन्तान ने लिये (आयेजे) सम्पादन करता है उस सुख तथा उपाय को (तव) आपकी (प्रणीतिषु) वेदरूप शिक्षा में चलकर (अश्याम) प्राप्त हों।

व्याख्या०—हे रुद्र ! हम लोगों के समुदाय में जो दुष्ट पापी जन हैं उनका तथा उनके समस्त वीरों का नाश करके हम को सुखी करें, आप ज्ञानस्वरूप पिता हैं हमारे हार्दिक नम्रभाव को जानकर अपनी प्रकाशित कीहुई विविध रोगनिवारक अत्युत्तम नीतों में हमें प्रवृतकरें॥

स्तु० वि०—देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा। पुरः सदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥४६॥

ऋ० १।५।१९।३

पद०—देवः। न। यः। पृथिवीं। विश्वधायाः। उपक्षेति। हितमित्रः। न। राजा। पुरः। सदः। शर्मसदः। न। वीराः। अनवद्या। पतिजुष्टा। इव। नारी।

पदा०—(यः) जो (देवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पृथिवीं, न) पृथिवी के समान (विश्वधायाः) सबका धारक और (राजा, न) राजा के समान (हितमित्रः) सब का हितकारक (उपक्षेति) सब में निवास करने वाला है वही परमात्मा हम सब के लिये (पुरः) पिता के सन्मुख (शर्मसदः) सुखपूर्वक बैठे हुए (वीराः, न) पुत्रों के समान निर्भय होकर (अनवद्या) निष्पाप (पतिजुष्टा) पतिव्रता (नारी, इव) नारी के समान अनन्य श्रद्धाभक्ति से उपासना करने के योग्य है ।

व्याख्या०—हम सब को उचित है कि जो परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का धारण तथा सबका हित करने वाला है उस को सर्वत्र परिपूर्ण जान, पिता के सन्मुख सुख पूर्वक बैठे हुए पुत्रों के समान निर्भय होकर पतिव्रता स्त्री की भान्ति हम लोग उपासना करें अर्थात् जिसप्रकार पतिव्रता नारी केवल अपने पति को लक्ष्य रख कर सेवा सुश्रूषा करती है उसी प्रकार हम लोग एक मात्र परम पिता परमात्मा की उपासना करें ॥

प्रा० वि०—सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च । विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः॥४७॥

ऋ० ७ । ८ । १२ । २॥

पद०—सा । मा । सत्यऽउक्तिः । परिपातु । विश्वतः । द्यावा । च । यत्र । ततनत् । अहानि । च । विश्वं । अन्यं । निविशते । यत् । एजति । विश्वाहा । आपः । विश्वाहा । उदेति । सूर्य्यः ।

पदा०—हे ईश्वर ! आपकी (सा, सत्यऽइक्तिः) वह पूर्वोक्त यथार्थ आज्ञा (यत्र) जिससे (सर्यः) सूर्य्य (द्यावा) द्युलोक में (एजति) घूमता हुआ (विश्वाहा) सब के हितार्थ (अहानि, च) दिन रात्रि का (ततनत्) विभाग करता है (च) और (यत्) जिस आज्ञा के अनुसार (आपः) भिन्न २ नदियां (विश्वाहा) सर्वहितार्थ (विश्व, अन्यं) परमेश्वर से भिन्न जगत् में (निविशते) भलेप्रकार प्रवेश करती हैं वह आपकी आज्ञा (नः) हमारे लिये (उदेति) प्रकाशित होकर (मा) हमारी (विश्वतः) सब ओर से हमारी (परिपातु) रक्षा करे ।

व्याख्या०—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! आपकी वेद रूप सत्य आज्ञा के पठन पाठान से हमारी संसार में सर्वथा रक्षा हो, अर्थात् हम दुष्ट कामों से सर्वदा पृथक् रहें, पुनः जिस दिव्य सृष्टि में आपने सूर्य्यादिकों को रात्रि दिवस आदि काल-विभाग के निमित्त रचकर गतिमान किया है उस सृष्टि में आप हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करें ॥

प्रा० वि०—देव देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे । शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥

ऋ० १ । ६ । ३२ । १३ ॥

पद०—देवः । देवानां । असि । मित्रः । अद्भुतः । वसुः । वसूनां । असि । चारुः । अध्वरे । शर्मन् । स्याम । तव । सप्रथःऽतमे । अग्ने । सख्ये । मा । रिषामा । वयं । तव ।

पदा०—(अग्ने) हे परमात्मन् ! (देवानां, देवः, असि) आप विद्वानों के विद्वान् हैं (वसूनां, वसुः) आप दयालुओं के दयालु हैं (अद्भुतः) आप आश्चर्य्यस्वरूप हैं (मित्रः) आप सर्वहितैषी हैं और (अध्वरे) ज्ञानादि यज्ञों में (चारुः) अत्यन्त शोभायमान हैं, आप ऐसी कृपा करें कि (वयं) हम लोग (तव) आपकी (सप्रथःऽतमे) बहुत फैली हुई (शर्मन्) रक्षा में (स्याम) रहें, और (तव, सख्ये) आपके साथ प्रीति करते हुए (मा, रिषामा) कभी हानि न उठायें ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप विद्वानों के विद्वान्, दयालुओं के दयालु, आश्चर्य्यस्वरूप, सर्वहितैषी और ज्ञानादि यज्ञों में अत्यन्त शोभायमान हैं, आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग सदा आपकी विस्तृत रक्षा में रहें और आपके साथ प्रीति करते हुए कभी दुःखित न हों ॥

प्रा० वि०—मा नो वधीरिन्द्र मा परादा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः । अण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ४९ ॥

ऋ० १ । ७ । १९ । ८

पद०—मा । नः । वधीः । इन्द्र । मा । परादाः । मा । नः । प्रिया । भोजनानि । प्रमोषीः अण्डा । मा । नः । मघवन् । शक्र । निर्भेत् । मा । नः । पात्रा । भेत् । सहऽजानुषाणि ।

पदा०—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः) हमको (मा, वधीः) दुःख न दें तथा (परादाः, मा) अपने से दूर न करें (नः) हमारे

(प्रिया) प्यारे (भोजनानि) भोगों को (मा, प्रमोषीः) न छीनें (मघवन्) हे भगवन् (नः) हमारे (अण्डा) गर्भों को (मा, निर्भेत्) नष्ट न करें (शक्र) हे सर्वशक्तिमन् ! (नः, पात्रा) हमारे पुत्रों और (महऽजानुपार्णि) इष्ट मित्रों को (मा, भेत्) नाश न करें।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप हमारे पापों को क्षमा करते हुए हमको किसी प्रकार का दुःख न दें, न हमको अपने से विमुख करें और न हमारे प्रिय भोजनों को हमसे दूर करें, हमारी गर्भवती स्त्रियों को भी किसी प्रकार का कष्ट न दें और न हमारे पुत्रों तथा अन्य इष्ट मित्रों को कभी दुःखित न करें॥

प्रा० वि०—मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रिरिषः ॥ ५० ॥

ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ॥

पद०—मा । नः । महान्तं । उत । मा । नः । अर्भकं । मा । नः । उक्षन्तं । उत । मा । नः । उक्षितं । मा । नः । वधीः । पितरं । मा । उत । मातरं । मा । नः । प्रियाः । तन्वः । रुद्र । रीरिषः ।

पदा०—(रुद्र) हे दुष्टों के नाशक! आप (नः) हमारे (महान्तं) बड़ों को (मा, वधीः) न हमारें (नः) मारे (अर्भकं) बालकों को (मा) मत मारें (नः) हमारे (उक्षन्तं) युवकों को (मा) न मारें (उत) और (नः) हमारे (उक्षितं) बच्चों को (मा) मत मारें (नः, पितरं) हमारे पितरों (उत) तथा (नः, मातरं)

हमारी माताओं को (मा) न मारें (प्रियाः) स्त्रियों और (तन्वः) शरीरों को (मा, रीरिषः) न मारें ।

व्याख्या०—हे दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर ऐसी कृपाकरें कि हमारे ज्ञानवृद्ध, आयुवृद्ध पिता=बड़ों को नष्ट न करें, और न युवा पुरुषों तथा गर्भों को नाश करें, अर्थात् हमारे माता, पिता तथा स्त्रियों और अन्य सम्बन्धियों का हनन न करें ॥

प्रा० वि०—मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषुमानो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ॥५१॥

ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ॥

पद०—मा । नः । तोके । तनये । मा । नः । आयौ । मा । नः । गोषु । मा । नः । अश्वेषु । रीरिषः । वीरान् । मा । नः । रुद्र । भामितः । वधीः । हविष्मन्तः । सदाम् । इव । त्वा । हवामहे

पदा०—(रुद्र) हे दुष्टनाशक ! आप (नः) हमारे (तोके, तनये) पुत्र पौत्रों को (मा, रीरिषः) न मारें (नः) हमारी (आयौ) आयु को नष्ट न करें (नः, गोषु) हमारे गौ आदि दूध देने वाले पशुओं को (मा) मत मारें (नः, अश्वेषु) हमारे शीघ्रगामी घोड़े आदि पशुओं को (मा) मत मारें (नः, वीरान्) हमारे शूरवीरों को (भामितः) क्रुद्ध होकर (मा, वधीः) न मारें (हविष्मन्तः) वेदविहित कर्म करने वाले हम लोग (सदं, इव) सदा ही (त्वा) आपकी (हवामहे) स्तुति करते रहें ।

व्याख्या०—हे रुद्र ! आप हमारे कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुत्रों, दूध देने वाले गौ आदि पशुओं और घोड़ा आदि उत्तम यानों तथा सेनापतियों और यज्ञ करने वालों को क्रुद्ध होकर कभी दुःख न दें, हमारी आयु को नष्ट न करें, हम लोग आपका आवाहन करते हैं, आप स्वयं हमारी और हमारे पुत्र धन ऐश्वर्य्य आदि की सदा रक्षा करते रहें ॥

उप० वि०—उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्म पुत्र इवसवनेषु शंससि । वृषेव वाजी शिशुमती रपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ ५२ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । २

पद०—उद्गाता । इव । शकुने । साम । गायसि । ब्रह्मऽपुत्रः । इव । सवनेषु । शंससि । वृषा । इव । वाजी । शिशुमतीः । अपीत्या । सर्वतः । नः । शकुने । भद्रं । आ । वद । विश्वतः । नः । शकुने । पुण्यं । आ । वद ।

पदा०—(शकुने) हे वाचकशक्तियुक्त मनुष्यों ! तुम (सवनेषु) यज्ञों में (उद्गाता, इव) सामगान करने वालों के समान (साम, गायसि) सामगान करो (ब्रह्मऽपुत्रः, इव) वेदरक्षक= वेदवेत्ता के समान (शंससि) ईश्वर स्तुति करो जिससे (वृषा, इव) के समान (वाजी) बलवान् होवो और (शिशुमतीः) उत्पन्न करने योग्य स्त्री को (अपीत्या) प्राप्त होकर योग्य सन्तान

उत्पन्न करो (शकुने) हे मनुष्यो ! (सर्वतः) सब प्रकार से (भद्रं, आ,वद) कल्याण दायक वचन बोलो और (शकुने) हे मनुष्यो ! (नः) हमारे दिये हुए (पुण्यं) पवित्र वेद का (विश्वतः) सर्वत्र (आ, वद) भले प्रकार उपदेश करो।

व्याख्या०—हे सर्वशक्तिमन् ! आप कृपाकरके हमको श्रद्धा भक्ति तथा शक्ति दें कि हमलोग ब्रह्मचर्य्याश्रम द्वारा नियमानुसार विद्याध्ययन करके यज्ञों में उद्गाता के समान सामगान करें, ब्रह्मा के समान चारो वेदों का उच्चारण करें, वृप की भांति बलवान् होकर युवती स्त्री से विवाह करके गृहस्थाश्रम के नियमों को पालें और इसके पश्चात् वानप्रस्थाश्रम को धारण करके सर्वत्र भद्र वचन बोलें, वानप्रस्थ के पीछे संन्यास धारण करके आपके प्रकाशित किये हुए वेदों का सर्वत्र उपदेश करें ॥

उप०वि०—आवदस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः । यदुत्पतन् वदसिकर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥ ५३ ॥ ऋ० २ ।८।१२।२॥

पद०—आ । वदन् । त्वं । शकुने । भद्रं । आ । वद । तूष्णीं । आसीनः । सुऽमतिं । चिकिद्धि । नः । यत् । उत्पतन् । वदसि । कर्करिः । यथा । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ।

पदा०—(शकुने) हे मनुष्यो ! तुम (आ, वदन्) वेद का उपदेश करते हुए (भद्रं, आ,वद) सुखकारी वचन बोलो (तूष्णीं) क्षमाशील होकर (नः) हमारी दीहुई (सुमतिं) वेदवाणीको

(चिकिद्धि) प्रकाशित करो (यथा) जैसे (कर्करिः) कार्य्यशील (सुऽवीराः) शूरवीर लोग (विदथे) संग्राम में बल दिखाते हैं वैसे ही तुम (यत्) जो कुछ (उत्पतन्) प्रयत्नशील होकर (वदसि) उपदेश करो (बृहत्, वदेम) गम्भीरता से बोलो।

व्याख्या०—परमगुरु परमात्मा विद्वान् धार्मिक पुरुषोंको उपदेश करते हैं कि "हे विद्वानो ! आप लोग वेद द्वारा जो कुछ उपदेश करो मधुर बाणी से गम्भीरता युक्त बोलो, यदि कोई श्रोता किसी बात से रुष्ट होकर अपशब्द भी कहे तो उसको सहनकर वेदानुसार ही उपदेश करो अर्थात् जैसे युद्ध में सूरमा चोटें खाता हुआ भी पीछे नहीं हटता वैसे ही सत्योपदेष्टा को उपदेश करने से कदापि न रुकना चाहिये, चाहे कोई कैसा ही अपमान क्यों न करे" ॥

इति प्रथमःप्रकाशः समाप्तः

द्वितीय प्रकाश

प्रार्थना विषय—ओ३म् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यंकरवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ओ३म् शान्तिःशान्तिःशान्तिः॥१॥

तैत्तिरीयारण्यक ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपाठक १० अनुवाक १

पद०—सह। नौ। अवतु। सह। नौ। भुनक्तु। सह। वीर्य्यं। करवावहै। तेजस्वि। नौ। अधीतं। अस्तु। मा। वि। द्विषावहै।

पदा०—दयालु परमात्मा (नः) हम गुरु शिष्य दोनों की (सह) एक साथ (अवतु) रक्षा करें (सह, नौ, भुनक्तु) हम दोनों को एक साथ भोग भोगायें (सह, वीर्य्यम्, करवावहै) हम दोनों एक साथ बल सम्पादन करें (नः, अधीतं) हमारा पढ़ा पढ़ाया (तेजस्वि) तेज वाला (अस्तु) हो (मा, वि, द्विषावहै) हम दोनों द्वेषरहित होकर परस्पर प्रीति से वर्त्तें (शान्तिः शान्तिः शान्तिः) तीनों प्रकार के दुःख हम से दूर हों।

व्याख्या०—हे सहनशीलेश्वर! आप सदा हमारी रक्षा करते रहें और हम सदा प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे की रक्षा करते हुए आपको पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुहृद्, परमगुरु आदि सुख दाता जानकर आपही की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करें, आप हमें क्षणमात्र भी न भूलें, और

ऐसी कृपा करें कि हम सब परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक और सहायक होकर किसी का दुःख न सहार सकें, किन्तु परम पुरुषार्थ से एक दूसरे का दुःख दूर करते हुए परमानन्द का उपभोग करें। हे अनन्तविद्यामय भगवन्! आपकी कृपा से हमारा बल सदा बढ़ता रहे, हमारा पठन पाठन परमविद्यायुक्त हो और हम संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों, आप हम पर ऐसी कृपा करें कि हम नाना पाखण्डरूप असत्य=वेदविरुद्ध—मतों को छोड़कर एक सत्यसनातन धर्म को ग्रहण करें जिससे सम्पूर्ण वैरभाव का मूल नष्ट होकर सब आनन्द के भागी बनें। हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से हम लोगों में परस्पर विद्वेष अथवा अप्रीति कभी न हो, किन्तु हम सब परमप्रीति से वर्त्तें वर्तावें। तीनवार शान्तिपाठ का तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा हमको आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दुःखों से पृथक् रखें।

(१) वात पित और कफ की विषमता से होने वाले ज्वरादि शारीरिक तथा काम क्रोध लोभ मोह आदि दुष्ट वृत्तियों से होने वाले मानसिक दुःख का नाम "आध्यात्मिक" (२) चोर डाकू आदि दुष्ट मनुष्यों और सर्प व्याघ्रादि दुष्ट जीवों से होने वाले दुःख का नाम "आधिभौतिक" और (३) अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अतिउष्णता आदि से होने वाले दुःख का नाम "आधिदैविक" है॥

स्तु० वि०—सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-

रर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

यजु० ४० । ८

पद०—सः । परि । अगात् । शुक्रं । अकायं । अऽव्रणं । अऽस्नाविरं । शुद्धं । अपापऽविद्धं । कविः । मनीषी । परिऽभूः । स्वयंऽभूः । अर्थान् । वि । अदधात् । शाश्वतीभ्यः । समाभ्यः ।

पदा०—(सः)वह उपासक पुरुष (शुक्रं)उस बलयुक्त परमात्मा को (पर्य्यगात्) प्राप्त होता है जो (अकायं) शरीररहित (अव्रणं) खण्डरहित (अस्नाविरं) नस तथा नाडियों से रहित (शुद्धं) निर्मल (अपापविद्धं) पाप से रहित (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) मन का साक्षी (परिभूः) सर्वव्यापक और (स्वयंऽभूः)स्वयंसिद्ध है, वही (अर्थान्) सब पदार्थों को (शाश्वतीभ्यः, समाभ्यः) अनादि काल से (व्यदधात्) रचता है ।

व्याख्या०—परमपिता परमात्मा अनादि काल से चराचर जगत् को रचता हुआ कभी शरीर धारण नहीं करता, क्योंकि वह अखण्ड, अनन्त, निर्विकार, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प, अचल और एकरस है, इसी कारण उसमें अंशांशीभाव तथा नाडी आदि का प्रवेश नहीं, वह अतिसूक्ष्म होने के कारण आवरणरहित, सदैव निर्मल, अविद्यादि दोषों से रहित, जन्म मरण हर्ष शोक क्षुधा तृषा आदि उपाधियों से रहित शुद्धस्वरूप है, वह न्यायकारी त्रिकालज्ञ और महाविद्वान् है, उसकी विद्या का कोई अन्त नहीं पासकता, सब जीवों के मन का साक्षी और सब के मनों का दमन

करने वाला है, उसका आदिकारण तथा माता, पिता और उत्पादक कोई नहीं, वह स्वयं सबका आदि कारण है, उसी ने अपनी सत्यविद्यारूप वेद का सब के हितार्थ उपदेश किया है जो अविद्यारूप अन्धकार का नाशक होने से सूर्य्यवत् है ॥

प्रा०वि०—दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥३॥

यजु० ३६ । १८

पद०—दृते । दृꣳह । मा । मित्रस्य । मा । चक्षुषा । सर्वाणि । भूतानि । सं । ईक्षन्तां । मित्रस्य । अहं । चक्षुषा । सर्वाणि । भूतानि । सं । ईक्षे । मित्रस्य । चक्षुषा । सं । ईक्षामहे ।

पदा०—(दृते) हे अविद्यान्धकार नाशक ! (मा) मुझको (दृꣳह) ज्ञानादि उत्तम गुणों से बढ़ाओ ताकि (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण प्राणी (मा) मुझको (मित्रस्य, चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्तां) देखें और (अहं) मैं (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य, चक्षुषा, समीक्षे) मित्र की दृष्टि से देखूं (मित्रस्य,चक्षुषा,समीक्षामहे) और सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

व्याख्या०—हे दुष्टस्वभावनाशक ! मैं दुष्टस्वभाव वाला न होऊं किन्तु ज्ञान तथा सत्यधर्म आदि शुभ गुणों से युक्त होऊं, हे परमैश्वर्य्यवान् परमात्मन् ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा विज्ञानादि के दान से मुझको बढ़ाओ, हे सर्वसुहृद् सर्वान्तर्यामिन् ! सब प्राणि मुझको मित्र की दृष्टि से देखें अर्थात् सब मेरे मित्र बनजायं, कोई मुझ से किंचिन्मात्र भी वैर न करे और

मैं भी निर्वैर होकर सब चराचर जगत् को अपने प्राणों के तुल्य प्रिय जानूं, या यों कहो कि सब देहधारी जीव परस्पर प्रेम से वर्ताव करें अन्याय से नहीं ॥

स्तु० वि०—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु-चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजा-पतिः ॥ ४ ॥ यजु० ३२ । १

पद०—तत् । एव । अग्निः । तत् । आदित्यः । तत् । वायुः । तत् । उँ । चन्द्रमाः । तत् । एव । शुक्रं । तत् । ब्रह्म । ताः आपः सः । प्रजाऽपतिः ।

पदा०—(तत्, एव) वही परमात्मा (अग्निः) अग्नि (तत्, आदित्यः) वही आदित्य (तत्, वायुः) वही वायु (तत्, उ, चन्द्रमाः) वही निश्चय करके चन्द्रमा (तत्, एव, शुक्रं) वही शुक्र (तत्, एव, ब्रह्म) वही ब्रह्म (ताः, आपः) वही आप और (सः, प्रजापतिः) वही प्रजापति है ।

व्याख्या०—परमात्मा एक ही है परन्तु भिन्न २ गुणों के कारण भिन्न २ नामों से पुकारा जाता है, जैसे प्रकाशस्वरूप होने से **अग्नि**, नाश रहित होने से **आदित्य**, सब का जीवनदाता होने से **वायु**, आल्हादक होने से **चन्द्रमा**, अत्यन्त शक्तिमान् होने से **शुक्र**, सब से बड़ा होने से **ब्रह्म**, सर्वत्र व्यापक होने से **आप** और सब का स्वामि होने से **प्रजापति** कहाता है ॥

स्तु०वि०—ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः स-होजो मयि प्राणापानौ ॥ ५ ॥ य० । ३६ । १

पद०—ऋचं । वाचं । प्रपद्ये । मनः । यजुः । प्रपद्ये । साम । प्राणं । प्रपद्ये । चक्षुः । श्रोत्रं । प्रपद्ये । वाक् । ओजः । सहऽओजः । मयि । प्राण-अपानौ ।

पदा०—हे परमात्मन् ! मैं (ऋचं, वाचं) सत्य तथा मधुर वाणी को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं (यजुः, मनः) सङ्कल्प वाले मन को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं (साम, प्राणं, प्रपद्ये) गान में समर्थ प्राण को प्राप्त होऊं (चक्षुः, श्रोत्रं) उत्तम नेत्र और कान को प्राप्त होऊं (वाक्, ओजः) वाणी का बल और (सहौजो) बलयुक्त (प्राण, अपानौ) प्राण, अपान (मयि) मेरे में प्राप्त हों ।

व्याख्या०—हे करुणाकर परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादि के ज्ञान से युक्त होकर उसका वक्ता होऊं तथा यजुर्वेद के सत्यार्थ संयुक्त मन को प्राप्त होऊं, सामवेदार्थ निदिध्यासनरूप प्राणों को प्राप्त होऊं, आरोग्य तथा दृढ़तादि गुणयुक्त शरीर को आप के अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं, और मेरे में बलयुक्त प्राण तथा अपान प्राप्त हों ॥

स्तु० वि०--स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥६॥ य०३२।१०

पद०—सः । नः । बन्धुः । जनिता । सः । विऽधाता । धामानि । वेद । भुवनानि । विश्वा । यत्र । देवाः । अमृतं । आऽनशानाः तृतीये । धामन् । आधि । ऐरयन्त ।

पदा०— हे मनुष्यो ! (यत्र, धामन्, तृतीये) जिस सर्वाधार तीसरे को (आनशानाः) प्राप्त होकर (देवाः) विद्वान् लोग (अमृतं) मुक्ति सुख का अनुभव करते हैं (सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बन्धुः)भ्राता=सहायक–(जनिता) पिता और (विधाता) कर्म फल का विधान करने वाला है और वही अपनी सर्वज्ञता से (विश्वा)सब(भुवनानि) लोकों तथा (धामानि) स्थानों को (अधि, ऐरयन्त) रचकर (वेद) यथावत् जानता है।

व्याख्या०—जिस सर्वाधार परमात्मा को प्राप्त होकर विद्वान् लोग मुक्ति सुख का अनुभव करते हैं वही परमात्मा हम सब के दुःख का नाशक, सब जगत् का रक्षक, सब का कर्मफल दाता और सर्वज्ञ होने से सब लोकलोकान्तरों को यथावत् जानने वाला है॥

प्रा० वि०--यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽअभयं नःपशुभ्यः॥७॥

य० ३६। २२

पद०—यतः। यतः। समीहसे। ततः। नः। अऽभयं। कुरु। शं। नः। कुरु। प्रजाभ्यः। अभयं। नः। पशुभ्यः।

पदा०—हे परमात्मन् ! (यतः, यतः) जहां २ (समीहसे) हम विचरें (ततः) वहां (नः) हम को (अभयं, कुरु) भय रहित करो (प्रजाभ्यः) पुत्र पौत्रादि से (नः, शं, कुरु) हमको सुखी करो और (पशुभ्यः) पशुओं से (नः) हमको (अभयं) अभय करो।

व्याख्या०—हे महेश्वर ! जिस २ देश में हम सम्यक् चेष्टा करें उस २ देश में हमको भय से रहित करो, प्रजा से हमको सुखी करो, गाय भेड़ बकरी और घोड़ा आदि पशुओं से हमको सुखी करो अर्थात् सब प्रकार के सुख साधनों से हमको युक्त करो ॥

उप० वि०--वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥ यजु० ३१ । १८

पद०—वेद । अहं । एतं । पुरुषं । महान्तं । आदित्यऽवर्णं । तमसः । परस्तात् । तं । एव । विदित्वा । अति । मृत्युं । एति । न । अन्यः । पन्थाः । विद्यते । अयनाय ।

पदा०(अहं) मैं ज्ञानी पुरुष (एतं) इस प्रत्यक्ष (पुरुषं) परमात्मा को (महान्तं) महान् (आदित्यऽवर्णं) प्रकाशस्वरूप और (तमसः, परस्तात्) अन्धकार से परे (वेद) जानता हूं (तं) उस परमात्मा को (विदित्वा, एव) ऐसा जानकर ही मनुष्य (मृत्युं) मृत्यु को (अति, एति) तरकर मुक्त होजाता है (अन्यः, पन्था) और कोई मार्ग (अयनाय) मुक्ति का (न, विद्यते) नहीं है ।

व्याख्या०—सब मनुष्यों को उचित है कि परमात्मा को बड़ों से बड़ा, प्रकाशस्वरूप, आदित्यादि का रचक, अविद्यादि दोषरूप अंधकार से रहित, स्वभक्तों, प्रेमी जनों और धर्मात्मा पुरुषों को अविद्यादि दोषों से रहित करने वाला जानें। विद्वानों का यही निश्चय है कि परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किये विना कोई सुखी

नहीं होता अर्थात् परमात्मा को जानकर ही जीव मृत्यु का उल्लङ्घन करसक्ता है अन्यथा नहीं ॥

प्रा० वि०तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ १ ॥ यजु० १९ । ९

पद०—तेजः । असि । तेजः । मयि । धेहि । वीर्यं । असि । वीर्यं । मयि । धेहि । बलं । असि । बलं । मयि । धेहि । ओजः । असि । ओजः । मयि । धेहि । मन्युः । असि । मन्युं । मयि । धेहि । सहः । असि । सहः । मयि । धेहि ।

पदा०—हे परमात्मन् ! आप (तेजः, असि) अग्नि गुण प्रधान कान्ति हैं (मयि) मेरे में (तेजः) वही कान्ति (धेहि) धारण करायें (वीर्यं, असि) आप उत्पादक शक्ति हैं (मयि) मेरे में (वीर्यं) वही शक्ति (धेहि) धारण करायें (बलं, असि) आप आत्मिक शक्ति हैं (मयि) मेरे में (बलं) आत्मिकशक्ति (धेहि) धारण करायें (ओजः, असि) आप सोमगुण प्रधान कान्ति हैं (मयि) मेरे में (ओजः) वही कान्ति (धेहि) धारण करायें (मन्युः, असि) आप दण्डरूप हैं (मयि) मेरे में (मन्युः) दण्डदातृत्व (धेहि) धारण करायें (सहः, असि) आप सहनशील हैं (मयि) मेरे में (सहः) सहनशीलता (धेहि) धारण करायें ।

व्याख्या०—हे स्वप्रकाश परमात्मन् ! आप अग्निगुण प्रधान कान्ति है, कृपाकरके वही कान्ति मुझ में स्थापन करायें जिससे मैं कभी निस्तेज वा दीन अथवा भीरु न होऊं, आप उत्पादक शक्ति हैं मुझ में भी उत्पादकशक्ति धारण करायें, आप बल हैं मुझ में भी बल स्थापन करायें आप सौम्यगुण प्रधान कान्ति हैं मुझमें वही कान्ति धारण करायें, आप दुष्टों के प्रति दण्डरूप हैं मुझ में वही दण्ड धारण करायें, आप सहनशील हैं मुझ में सहन सामर्थ्य धारण करायें जिससे शरीर, इन्द्रिय, मन तथा आत्मा यह सब बलवान् होकर मैं आप की अनन्य भक्ति करता हुआ सदा सुखी रहूं ॥

उप० नि०—परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्या-त्मनात्मानमभि संविवेश ॥ १० ॥ यजु० ३२ । ११

पद०—परिऽइत्य । भूतानि । परिऽइत्य । लोकान् । परीत्य । सर्वाः । प्रऽदिशः । दिशः । च । उपस्थाय । प्रथमऽजां । ऋतस्य । आत्मना । आत्मानं । अभि । सं । विवेश ।

पदा०—हे मनुष्यो ! (भूतानि) सब प्राणियों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान्,परीत्य) लोकलोकान्तरों में व्याप्त (सर्वाः,प्रदिशः) सब उपदिशाओं (च) और (दिशः) दिशाओं में (परीत्य) व्याप्त जो (ऋतस्य) ऋत नाम परमात्मा है उसकी (प्रथमजां) प्रथम कल्प में प्रकाशित की हुई वेद बाणी को (उपस्थाय) विचारकर

(आत्मना) अपने आत्मा से (आत्मानं) परमात्माको (अभि, संविवेश) अनुभव करो ।

व्याख्या—प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त सब संसार में तथा पूर्वादि दिशाओं और ईशानादि उपदिशाओं में, ऊपर नीचे सर्वत्र परमेश्वर व्याप्त होकर परिपूर्ण होरहा है, एक अण्ड-मात्र भी उससे अप्राप्त=खाली नहीं, प्रथम=मुख्य-प्राणी अपने आत्मा से अर्थात् अत्यन्त सत्याचरण, विद्या श्रद्धाभक्ति द्वारा सत्यस्वरूप परमात्मा को यथावत् जानता हुआ उसके परमानन्द स्वरूप में प्रवेश करता अर्थात् सब दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त होता है ॥

प्रा० वि०--भग प्रणेतर्भगसत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ११ ॥

यजु० ३४ ॥ ३६

पद०—भग । प्रणेतः । भग । सत्यराधः । भग । इमां । धियं । उत् । अव । अददत् । नः । भग । प्र । नः । जनय । गोभिः । अश्वैः । भग । प्र । नृभिः । नृवन्तः । स्याम ।

पदा०—(भग) हे भगवन् ! आप (भग, प्रणेतः) ऐश्वर्य के दाता तथा (सत्यराधः) सत्य के स्वामी हैं (नः) हमको (भग, अददत्) ऐश्वर्य्य देते हुए (इमां, धियं, उत्, अव) वर्त्तमान् बुद्धि की उत्कृष्टता से रक्षा करें (भग) हे भगवन् !

(गोभिः, अश्वैः, नृभिः) गौ, घोड़े तथा मनुष्यों से (नः) हमारे (भग) ऐश्वर्य्य को (प्र, जनय) बढ़ायें जिससे हम (नृवन्तः,स्याम) बहुत प्रजावाले होवें ।

व्याख्या०—हे परमैश्वर्य्यवान्, ऐश्वर्य्यदाता परमात्मन् ! सकल ऐश्वर्य्य आपके ही अधीन है, सो आप कृपाकर हम लोगों का दारिद्र छेदन करके हमको परमैश्वर्य्य दान करें, हे सत्यराधः भगवन् ! सत्य ऐश्वर्य्य की सिद्धि करने वाले आप ही हैं सो नित्य ही आप हमको अपनी कृपा से ऐश्वर्य्य देते रहें, हे सत्यस्वरूप भगवन् ! आप हमको पूर्ण ऐश्वर्य्य तथा सर्वोत्तम बुद्धि दें जिससे हम लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जान कर और आपके गुण तथा आपकी आज्ञा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके तद्-नुकूल अनुष्ठान करते हुए मोक्षपद के अधिकारी बनें, हे भग-पर्जन्य=सर्व ऐश्वर्य्य उत्पादक परमात्मन्—! आप हमारे लिये सब प्रकार का ऐश्वर्य्य अर्थात् उत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य प्राप्त करायें, हे सर्वशक्तिमन् ! आप से हमारी यह विशेष प्रार्थना है कि हम में कोई दुष्ट तथा मूर्ख न रहे और न हम में कोई ऐसा मनुष्य उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सत्कीर्ति नष्ट हो ॥

प्रा० वि०—तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ १२ ॥

यजु० ४० ॥ ५

पद०—तत् । एजति । तत् । न । एजति । तत् । दूरे । तत् ।

उ । अन्तिके । तत् । अन्तः । अस्य । सर्वस्य । तत् । उ । सर्वस्य । अस्य । बाह्यतः ।

पदा०—(तत्) परमात्मा (एजति) सब जगत् को चलाता है (तत्) वह आप (न,एजति) नहीं चलता (तत्) वह (दूरे) दूर है (उ) और (अन्तिके) समीप है (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस सम्पूर्ण जगत् के (अन्तः) भीतर है (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य, बाह्यतः) इस सम्पूर्ण जगत् के बाहर है ।

व्याख्या—परमात्मा सब चराचर जगत् को यथायोग्य चलाता हुआ आप नहीं चलता किन्तु एकरस निश्चल होकर सब में परिपूर्ण रहता है। परमात्मा को जो दूर कहा गया है इसका तात्पर्य्य यह है कि वह अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचार शून्य, अजितेन्द्रिय और ईश्वरभक्ति रहित मनुष्यों से नहीं जाना जाता, और समीप कहने का तात्पर्य्य यह है कि सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी,जितेन्द्रिय,सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचार शील मनुष्यों से वह जाना जाता है, वह आत्माका भी आत्मा और सब जगत् के भीतर बाहर तथा मध्य में विराजमान है, एक तिलमात्र भी उसमें खाली नहीं,उसके जानने से सब कुछ जाना जाता और लौकिक सुख तथा मुक्ति प्राप्त होती है अन्यथा नहीं ॥

उप० वि०—आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां

वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां आत्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ १३ ॥ यजु० । १८ । २९

पदा०—(देवाः) हे विद्वानो! (आयुः) अपनी आयु को (यज्ञेन) यज्ञ नाम परमात्मा अथवा सर्व हितकारक कामों के लिये (कल्पतां) समर्पण करो (प्राणः, यज्ञेन, कल्पतां) प्राण को यज्ञ के लिये समर्पण करो (चक्षुः, यज्ञेन कल्पतां) नेत्रों को यज्ञ के लिये समर्पण करो (श्रोत्रं,यज्ञेन,कल्पतां) कानों को यज्ञ के लिये समर्पण करो (वाक्,यज्ञेन,कल्पतां) वाणी को यज्ञ के लिये समर्पण करो(मनः,यज्ञेन, कल्पतां) मन को यज्ञ के लिये समर्पण करो (आत्मा, यज्ञेन, कल्पतां) आत्मा को यज्ञ के लिये समर्पण करो (ब्रह्मा,यज्ञे,कल्पतां) ब्रह्मविद्या को यज्ञ के लिये समर्पण करो(ज्योतिः,यज्ञेन,कल्पतां)तेज को यज्ञ के लिये समर्पण करो (स्वः. यज्ञेन, कल्पतां) सुख को यज्ञ के लिये समर्पणकरो (पृष्ठं,यज्ञेन,कल्पतां) आधाररूप पृथिवीको यज्ञ के लिये समर्पण करो (च) और (स्तोमः, च, यजुः, च, ऋक्, च, साम, च) स्तोत्र, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को (बृहत्, च, रथन्तरं, च) बृहत् सामगान और रथन्तर सामगान को यज्ञ के लिये समर्पणं करो, सत्यवाणी और (वेट) उत्तम क्रिया द्वारा (स्वः, अगन्म) सुख को प्राप्त

करो और (प्रजापतेः) जगदीश्वर परमात्मा की (प्रजाः) योग्य सन्तान (अभूम) बनो; और (अमृताः, अभूम) मुक्त होजाओ॥

व्याख्या०-सब मनुष्यों को चाहिये कि अपनी आयु को, अपने प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और आत्मा को, अपनी ब्रह्मविद्या तथा ज्योति को, अपने सुख साधनो तथा पृथिवी आदि को, अपनी स्तुतियों को ऋग्वेदादि चारो वेदों तथा बृहत् सामगान और रथन्तर सामगान को तभी सफल जानें जब वह सर्व हितकारक कामों के लिये हों, इसप्रकार जीवन व्यतीत करने से ही हमलोग मोक्ष के भागी बन सक्ते हैं अन्यथा नहीं, अतएव ईश्वर से सर्वदा यही प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमारे हृदय को अपनी भक्ति और उपासना में प्रवृत्त करके सदा प्रिय कामों में लगावें॥

स्तु० वि०यस्मान्न जातः परोऽ अन्योऽ अस्तिय आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतिꣳषि सचते स षोडशी॥१४॥

यजु०८।३६

पद०-यस्मात्। न। जातः परः। अन्यः। अस्ति। यः। आ। विवेश। भुवनानि। विश्वा। प्रजापतिः। प्रजया। संरराणः। त्रीणि। ज्योतींषि। सचेत। सः। षोडशी।

पदा०-(यस्मात्) जिससे (परः) बड़ा (अन्यः) और

(न, जातः, अस्ति) न हुआ न है और न होगा (यः) जो (प्रजापतिः) जगत् का स्वामी (विश्वा, भुवनानि) सब लोकों को (आविवेश) अतिशय व्याप्त किये हुए है (सः) वह (षोडशी) सोलह कलाओं का अधिष्ठाता (प्रजया) सब प्रजा के साथ (संरराणः) रमण करता हुआ उन की रक्षा के लिये (त्रीणि, ज्योतींषि) सूर्य्य, बिजली और अग्नि इन तीन ज्योतियों को (सचते) रचता है ।

व्याख्या०-वह पूर्ण परमात्मा जिससे बड़ा वा जिसके तुल्य न कोई हुआ न है और न होगा और जो सब भुवनों तथा पदार्थों का निवास स्थान है, जो असंख्यात लोकों में प्रविष्ट होकर परिपूर्ण होरहा है, जिसने अग्नि, बिजली और सूर्य्य को रचा है और जिससे १६ कलायें उत्पन्न हुईं, वही सब का स्वामी और सब को व्याप्त किये हुए है । जो ऐसे परमात्मा को छोड़कर दूसरे की उपासना करता है वह कभी सुख को प्राप्त नहीं होता, किन्तु सदा दुःख ही भोगता है । १६ कलायें यह हैं:—(१) ईक्षण=विचार (२) प्राण (३) श्रद्धा (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि (७) जल (८) पृथिवी (९) (इन्द्रियां (१०) मन (११) अन्न (१२) वीर्य्य (१३) तप=धर्मानुष्ठान (१४) मंत्र=वेद विद्या (१५) कर्मयोग=चेष्टास्थान (१६) नाम ॥

८० त्रि०—स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ १५ ॥ यजु०३ । २४

पद०—सः । नः । पिता । इव । सूनवे । अग्ने । सूपायनः । भव । सचस्व । नः । स्वस्तये ।

पदा०–(अग्ने) हे परमात्मन् ! आप (नः) हम को वैसे ही सुगमता पूर्वक (सुपायनः, भव) प्राप्त होने योग्य हैं (पिता, इव) जैसे पिता के पास पुत्र प्राप्त होने योग्य होता है, (सः) वह आप (नः)हमको (स्वस्तये) सुख सम्पादन के लिये (सचस्व) अपने साथ सम्बद्ध करें।

व्याख्या–हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें, कि जैसी सुगमता से पुत्र पिता के पास पहुंच जाता है वैसी ही सुगमता से हम आप के पास पहुंच जायं अर्थात् हमारा आप के साथ अति निकट सम्बन्ध होजाए जिससे हम सदा सुख सम्पादन के लिये आप के साथ सम्बद्ध रहें ॥

स्तु० वि०–विभूरसि प्रवाहणः । वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेताः। तुथोऽसि विश्ववेदः॥१६॥

यजु० ५ । ३१

पद०–विभूः । असि । प्रवाहणः । वन्हिः । असि । हव्यवाहनः । श्वात्रः । असि । प्रचेताः । तुथः । असि । विश्ववेदाः ।

पदा०–हे ईश्वर! आप (विभूः) सर्वव्यापक और (प्रवाहणः) जगदाधार (असि) हैं (वन्हिः) रसों के भेदक और (हव्यवाहनः, असि) हवियों के फैलाने वाले हैं (प्रचेताः) ज्ञानस्वरूप और (श्वात्रः, असि) ज्ञान के विस्तारक हैं (तुथः) सब में परिपूर्ण और (विश्ववेदाः, असि) सब के जानने वाले हैं।

व्याख्या०–हे व्यापकेश्वर ! आप विभु=सर्वत्र प्रकाशित और परमैश्वर्य्ययुक्त हैं, सब जगत् को नियम पूर्वक चलाने

वाले तथा सब के निर्वाहकारक हैं । हे स्वप्रकाशक ! सर्वरमवाह-केश्वर ! आप वन्हि=सब द्रव्यपदार्थों के भेदक, आकर्षक तथा यथा-वत् स्थापक हैं । हे आत्मन् ! आप व्यापनशील तथा प्रकृष्ट ज्ञान-स्वरूप और प्रकृष्ट ज्ञान के देने वाले हैं । हे सर्ववित् ! आप सबमें प-रिपूर्ण और सब के जानने वाले हैं ॥

स्तु० वि०—उशिगसि कविः । अङ्घारिरसि ब-म्भारिः । अवस्यूरसि दुवस्वान् । शुन्ध्यूरसि मार्जा-लीयः । सम्राडसि कृशानुः । परिषद्योऽसि पवमानः । नभोऽसि प्रतक्वा । मृष्टोऽसि हव्यसूदनः । ऋतधा-मासि स्वर्ज्योतिः ॥ १७ ॥ यजु० ५ । ३२ ॥

पद०—उशिक् । असि । कविः । अङ्घारिः । असि । बम्भा-रिः । अवस्यूः । असि । दुवस्वान् । शुन्ध्यूः । असि । मार्जालीयः । सम्राट् । असि । कृशानुः । परिषद्यः । असि । पवमानः । नभः । असि । प्रतक्वा । मृष्टः । असि । हव्यसूदनः । ऋतधाम । असि । स्वः । ज्योतिः ।

पदा०—हे सर्वोपरि परमात्मन् ! आप (उशिक्, असि) कान्तिवान् हैं (कविः, अङ्घारिः, असि) सर्वज्ञ और पापहर्त्ता हैं (बम्भरिः, अवस्यूः, असि) जगद्धर्त्ता और धर्मात्माओं के रक्षक हैं (दुवस्वान्, शुन्ध्यूः, असि) सब के सेवनीय और शुद्ध-स्वरूप हैं (मार्जालीयः, सम्राट्, असि) मार्जन करने वाले और राजाधिराज हैं (कृशानुः, परिपद्यः, असि) पदार्थों को सूक्ष्म

करने वाले और संसाररूप सभा के अधिष्ठाता हैं (पवमानः, नभः, असि) सब पदार्थों के पवित्र करने वाले और निराकार हैं (प्रतका, मृष्टः असि) सर्व साक्षी और पापशोधक हैं (हव्यसूदनः, ऋतधाम, असि) हवियों द्वारा वायु आदिकों को शुद्ध करने वाले और सत्य का आधार हैं (स्वः, ज्योतिः) सुखस्वरूप और सर्वप्रकाशक हैं ।

व्याख्या०—हे सर्वप्रिय ! आप कमनीयस्वरूप=सब की कामना के योग्य हैं, आप पूर्ण विद्वान् तथा अपने भक्तों के अघ नाम पापों के अरि=शत्रु अर्थात् नाशक हैं, सब जगत् के पालक तथा धारक हैं, धर्मात्माओं को अन्नादि पदार्थ देने वाले हैं, शुद्धस्वरूप होने से सब जगत् के शोधक और पापनिवारक हैं, सब राजाओं के राजा और दीनों के सुखदाता हैं । हे न्यायकारिन् पवित्र परमेश्वर ! आप सभ्य, सभा के आज्ञापक, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक हैं, पवित्रस्वरूप और पवित्रकारक हैं । हे निर्विकार ! आकाशवत् क्षोभरहित और अतिसूक्ष्म होने से आप का नाम " नभ " है, सब के ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले हैं, ताकि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उसको वैसा ही फल मिले अन्य का अन्य को न मिले, शुद्धस्वरूप, सब पापों के मार्जक=शोधक तथा मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक और पुष्टिकारक द्रव्यों द्वारा वृष्टि आदि की शुद्धि करने करानेवाले हैं । अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता होने से आप का नाम "हव्यसूदनः" है । हे भगवन् ! आपका धाम = निवासस्थान–

सत्य है, अर्थात् सत्यव्यवहार में ही आप सदा निवास करते हैं, आप सुखस्वरूप और सुखकारक तथा स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हैं ॥

प्रा० वि०—समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः । अजोऽस्येकपात् । अहिरसि बुध्न्यः । वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि । ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम् । अध्वनामध्वपते प्र मा तिर । स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥१८॥

यजु० ५ । ३३

पद०—समुद्रः । असि । विश्वव्यचाः । अजः । असि । एकपात् । अहिः । असि । बुध्न्यः । वाक् । असि । ऐन्द्रं । असि । सदः । असि । ऋतस्य । द्वारौ । मा । मा । सन्तापं । अध्वनां । अध्वपते । प्र । मा । तिर । स्वस्ति । मे । अस्मिन् । पथि । देवयाने । भूयात् ॥

पदा०—हे परमात्मन् ! आप (समुद्रः, विश्वव्यचाः, असि) द्रवणीयस्वरूप और जगत्‌विस्तारक हैं (अजः, असि) अजन्मा हैं (एकपात्, अहिः, असि) सब जगत् को अपने एक देश में रखने वाले तथा हीनता रहित हैं (वाक्, बुध्न्यः, असि) अनन्त विद्यास्वरूप और सब के भीतर की जानने वाले हैं (ऐन्द्रं, सदः, असि) ऐश्वर्य्य के आधार हैं (ऋतस्य, द्वारौ) सत्य प्राप्ति के विद्या और धर्मरूप दो द्वार (मा) मेरे लिये (सन्तापं, मा) तपाने वाले न हों । (अध्वपते) हे धर्म मार्ग के स्वामी ! (मा) मुझको (अध्वनां)

संसार के मार्ग से (प्र, तिर) पार करें, और ऐसी कृपाकरें कि (अस्मिन्, देवयाने, पथि) इस विद्वानों के मार्ग में (मे) मेरे लिये (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो।

व्याख्या०—हे द्रविणीयस्वरूप ! सब भूत आप ही में चेष्टा करते हैं, आप ने सहजस्वभाव से सब जगत् को विस्तृत किया है, इसी से आपका नाम "विश्वव्यचाः" है, आपका जन्म कभी नहीं होता, यह सब जगत् आपके एकदेश में हैं और आप हीनता रहित हैं, आप अनन्तविद्यास्वरूप और सबके भीतर की जानने वाले हैं, आप ऐश्वर्य्य के आधार हैं। ऐसी कृपा करें कि सत्प्राप्ति के जो विद्या और धर्मरूप दो द्वार हैं इनमें चलना हमारे लिये कठिन न हो ताकि हम सुखपूर्वक सत्य को प्राप्त करसकें। हे धर्ममार्ग के स्वामी ! हमको ऐसी शक्ति दें कि हम उक्त मार्ग द्वारा संसाररूप समुद्र से पार होकर मुक्तिसुख को पासकें ॥

स्तु० वि०—देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजमनसि । एनस एनसोऽवयजमनसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥

यजु० ८ । १३ ॥

पद०—देवकृतस्य । एनसः । अवयजनं । असि । मनुष्यकृतस्य । एनसः । अवयजनं । असि । पितृकृतस्य । एनसः । अवय-

जनं। असि। यत्। च। अहं। एनः। विद्वान्। चकार। यत्। अविद्वान्। तस्य। सर्वस्य। एनसः। अवयजनं। असि।

पदा०—हे सर्वपापनाशक परमात्मन्! आप (देवकृतस्य, एनसः) विद्वान् विषयक किये हुए पापों के (अवयजनं, असि) नाशक हैं (मनुष्यकृतस्य, एनसः, अवयजनं, असि) मनुष्य विषयक किये हुए पापों के नाशक हैं (पितृकृतस्य, एनसः, अवयजनं, असि) पितृ विषयक किये हुए पापों के नाशक हैं (आत्मकृतस्य, एनसः,अवयंजनं,असि) आत्मविषयक किये हुए पापों के नाशक हैं (एनसः,एनसः,अवयजनं,असि) सब प्रकार के पापों के नाशक हैं (च) और (यत्) जो (एनः) पाप (अहं) मैंने (विद्वान्) जानकर (च) तथा (यत्) जो (अविद्वान्) न जानकर (चकार) किये हैं (तस्य, सर्वस्य, एनसः) उन सब पापों के (अवयजनं, असि) नाशक आप हैं।

व्याख्या०—हे परमात्मन्! आप सब पापों के नाश करने वाले हैं, चाहे वह पाप विद्वानों वा साधारण मनुष्यों के सम्बन्ध में, चाहे ज्ञानी अथवा आत्मा के सम्बन्ध में किये हों और चाहे जानकर अथवा न जानकर किये हों, उन सब पापों के नाशक आप ही हैं॥

स्तु० प्रा०—हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २०॥ यजु० १३।४॥

पद०—हिरण्यगर्भः। समवर्त्तत। अग्रे। भूतस्य। जातः। पतिः। एकः। आसीत्। सः। दाधार। पृथिवीं। द्यां। उत। इमां। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम।

पदा०—(हिरण्यगर्भः) सब प्रकाशमान पदार्थों का आधार (अग्रे, समवर्तत) सृष्टि में पूर्व वर्त्तमान था (भूतस्य) वही सब भूतों का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (आसीत्) था (सः) वही (एकः) अद्वितीय (इमां) इस (पृथिवीं) पृथिवी को (उत) और (द्यां) द्युलोक को (दाधार) धारण कर रहा है, उस (कस्मै, देवाय) सुखस्वरूप देव के लिये (हविषा, विधेम) आत्मसमर्पण रूप हवि देते हैं।

व्याख्या०—जो परमात्मा सब का स्वामी और सब प्रकाशमान पदार्थों का आधार है वही सृष्टि से पूर्व वर्त्तमान था और वही अब पृथिवी और द्युलोक आदि सब लोकों को धारण कर रहा है, वही सुखस्वरूप और सब को सुख देने वाला है, उसी की भक्ति तथा उपासना हम सब को करनी चाहिये, अन्य की नहीं॥

प्रा०वि०—इन्द्रो विश्वस्य राजति। शंनोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ २१॥ यजु०३६ मं०८॥

पद०—इन्द्रः। विश्वस्य। राजति। शं। नः। अस्तु। द्विपदे। शं। चतुष्पदे।

पदा०—जो (इन्द्रः) अनन्त ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मा (विश्वस्य) सब को (राजति) प्रकाशित करता है, वह (नः) हमारे

(द्विपदे) पुत्र पौत्रादि के लिये (शं) सुखकारी हो और (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शं) सुख कारी हो।

व्याख्या०—जो परमात्मा अनन्त ऐश्वर्य्यवान् होकर सब को ऐश्वर्य्य देता और प्रकाशमान करता है, उससे हमारी प्रार्थना है कि वह हमारे पुत्र पौत्रादि सब सम्बन्धियों और पशुओं को सब प्रकार से सुखी रखे ॥

प्रा० वि०—शंन्नो वातः पवताᳬ शंन्नस्तपतु सूर्यः। शंन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु॥२२॥

यजु० ३६। १०

पद०—शं। नः। वातः। पवतां। शं। नः। तपतु। सूर्य्यः। शं। नः। कनिक्रदत्। देवः। पर्जन्यः। अभि। वर्षतु।

पदा०—हे परमेश्वर ! (वातः) वायु (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारक होकर (पवतां) चले (सूर्य्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शं)सुखकारक होकर(तपतु) तपे(पर्जन्यः,देवः)मेघ देवता (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी होकर (अभिवर्षतु) सब ओर से वर्षा करे।

व्याख्या०—हे सर्व नियन्ता ! हमारे लिये सुगन्धियुक्त मन्द २ शीतलवायु सुखकारी होकर चले, सूर्य्य सुखकारी होकर तपे, गर्जता हुआ मेघ हमारे लिये सुखकारक होकर समय २ पर वर्षे ताकि आपके कृपापात्र हम लोग सदा सुख से जीवन व्यतीत कर सकें ॥

प्रा॰ वि॰—अहानि शं भवन्तु नः। शꣳरात्रीः प्रतिधीयताम्। शन्नइन्द्राग्नी भवतामवोभिः। शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥२३॥ यजु॰ ३६।११

पद॰—अहानि। शं। भवन्तु। नः। शं। रात्रीः। प्रति। धीयतां। शं। नः। इन्द्राग्नी। भवतां। अवोभिः। शं। नः। इन्द्राऽवरुणा। रातऽहव्या। शं। नः। इन्द्राऽवरुणा। रातऽहव्या। शं। नः। इन्द्राऽपूषण। वाजऽसातौ। शं। इन्द्राऽसोमा। सुविताय। शंयोः।

पदा॰—हे कालपते परमात्मन्! (अहानि) सब दिन (नः) हमारे लिये (शं, भवन्तु) कल्याणकारी हों (रात्रीः) सब रातें (शं, प्रति) कल्याण के लिये (नः) हमको (धीयतां) धारण करें (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और अग्नि (अवोभिः) नानाविध रक्षा करते हुए (नः) हमारे लिये (शं, भवतां) सुखकारी हों (रातहव्या) सुख के दाता (इन्द्रावरुणा) वायु और जल तथा (वाजऽसातौ) अन्नादि के देने वाले (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी हों (इन्द्रासोमा) राजा और प्रजा (सुविताय) हमारी सन्तति के लिये (शंयोः) सुख दायक हों।

व्याख्या॰—हे काल के स्वामिन् परमात्मन्! आप ऐसी कृपाकरें कि हमको रात्रिदिन सदा ही सुख प्राप्त हो, हम कभी दुःखी न हों, सूर्य्य और अग्नि हमको किसी प्रकार से दुःख दाई न हों, किन्तु सब प्रकार से हमारी रक्षा ही करें, इसी प्रकार वायु

और जल हमारे अनुकूल रहकर सदा हमको सुख देते रहें, बिजली तथा पृथिवी भी सदा हमारे अनुकूल रहें और राजा प्रजा भी हमको सुखदायी हों, अर्थात् किसी से भी किसी प्रकार का दुःख हमको प्राप्त न हो, यही आप से प्रार्थना है ॥

स्तु० वि०—प्र तद्वोचेत मृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ २४ ॥

यजु० ३२ । ९

पद०—प्र । तत् । वोचेत् । अमृतं । नु । विद्वान् । गन्धर्वः । धाम । विभृतं । गुहा । सत् । त्रीणि । पदानि । निहिता । गुहा । अस्य । यः । तानि । वेद । सः । पितुः । पिता । असत् ।

पदा०—हे मनुष्यो ! (तत्) परमात्मा (अमृतं) मुक्तस्वरूप है, वही (धाम) मुक्तों का निवासस्थान और (गुहा) सब की बुद्धियों में (सत्) स्थित है (अस्य) उस परमात्मा को (यः) जो (नु) शीघ्र ही (गुहा) अपने हृदय में (विभृतं) धारण करता है, वह (गन्धर्वः) वेदवेत्ता और (विद्वान्) ज्ञानी है, वही परमात्मा का (प्र, वोचेत्) भले प्रकार प्रतिपादन करसक्ता है, (त्रीणि, पदानि) तीन पदों को (यः) जो (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः, पिता) विद्वानों का विद्वान है

व्याख्या०—परमात्मा मुक्तस्वरूप, मुक्त जीवों का निवास स्थान और सब की बुद्धियों में विराजमान है, जो कोई इस पर-

मात्मा को शीघ्र ही अपने हृदय में धारण करलेता है वही वेदवेत्ता और ज्ञानी कहाता तथा परमात्मा का भले प्रकार उपदेश कर-सक्ता है, जो विद्वान् परमात्मा के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप तीन सामर्थ्यों को भले प्रकार जानता है वह परम विद्वान् है ॥

प्रा०वि०—द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शन्तिरापः शान्तिरोषधयः शन्तिः। वनस्पतयः शा-न्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः। सर्व ँ शान्तिश्शा-न्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २५ ॥

यजु० ३६। १७

पद०—द्यौः। शान्तिः। अन्तरिक्षं। शान्तिः। पृथिवी। शान्तिः। आपः। शान्ति। ओषधयः। शान्तिः। वनस्पतयः। शान्तिः। विश्वेदेवाः। शान्तिः। ब्रह्म। शान्तिः। सर्वं। शान्तिः। शान्तिः। एव। शान्तिः। सा। मा। शन्तिः। एधि।

पदा०—(द्यौः, शान्तिः) द्युलोक शान्तिदायक हो (अन्त-रिक्षं, शान्तिः) अन्तरिक्ष शान्तिदायक हो (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी शान्तिदायक हो (आपः, शान्तिः) नानाजल शान्ति-कारक हों, (ओषधयः, शान्तिः) ओषधियां शान्तिदायक हों, (वनस्पतयः शान्तिः) वनस्पतियां शान्तिकारक हों (विश्वेदेवाः, शान्तिः) सब दिव्यगुणयुक्त पदार्थ शान्तिदायक हों (ब्रह्म, शान्तिः) ब्रह्मणादि चारों वर्ण शान्तिदायक हों (सर्वं, शान्तिः) सब पदार्थ शान्तिदायक हों (शान्तिः, एव शान्तिः) शान्ति

ही शान्ति हो और (सा) वह (शान्तिः) शान्ति (मा) मेरे लिये (एधिं) हो।

व्याख्या०—परमात्मा से प्रार्थना है कि द्युलोक, मध्यलोक, पृथिवीलोक, नानाविध जल, ओषधियां, बनस्पतियां तथा अन्य सब दिव्यगुणयुक्त पदार्थ हमारे लिये शान्ति दायक हों और चारो वर्णों के लोग भी हम को शान्ति देने वाले हों॥

स्तु० वि० नमः शम्भवाय च मयो भवाय च। नमः शङ्कराय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च॥ २६॥ यजु० १६। ४१॥

पद०—नमः। शम्भवाय। च। मयोभवाय। च। नमः। शङ्कराय। च। मयस्कराय। च। शिवाय। च। शिवतराय। च।

पदा०—(नमः, शम्भवाय, च, मयोभवाय, च) लौकिक और पारलौकिक सुखों के दाता परमात्मा को हमारा नमस्कार हो (नमः, शङ्कराय,च,मयस्कराय,च) लौकिक और पारलौकिक सुख साधनों के दाता ईश्वर को नमस्कार हो (नमः,शिवाय,च,शिवतराय,च) कल्याणस्वरूप और कल्याणदाता परमात्माको हमारा नमस्कार हो।

व्याख्या०—हे कल्याणस्वरूप कल्याणकर! आप जो मोक्ष-स्वरूप और मोक्षसुखके देने वाले हैं आपको नमस्कार हो, आप सांसारिक सुख दाता हैं, आपको नमस्कार हो, आप शङ्कररूप हैं, आप से ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं, आप ही मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख पहुंचाने वाले तथा

मंगलमय, अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक हैं, इस लिये हम आपको वारम्बार नमस्कार करते हैं ॥

प्रा०वं०—भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा॑ᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥ यजु० २५ । २१ ॥

पद०—भद्रं । कर्णेभि । शृणुयाम । देवाः । भद्रं । पश्येम । अक्षभिः । यजत्राः । स्थिरैः । अङ्गैः । तुष्टुवांसः । तनूभिः । व्यशेमहि । देवहितं । यत् । आयुः ।

पदा०-हे परमेश्वर! (देवाः) सब विद्वान् (यजत्राः) सर्वहितकारक कर्मों का अनुष्ठान तथा (तुष्टुवांसः) ईश्वर स्तुति का गान करते हुए (भद्रं) कल्याण को (कर्णेभिः) कानों से (शृणुयाम) सुनते रहें (भद्रं) कल्याण को (अक्षभिः) आंखो से (पश्येम) देखते रहें,(यत्) जो (आयुः) अवस्था (देवहितं) विद्वानों को हितकारक है उसको हम लोग (स्थिरैः, अङ्गैः, तनुभिः) दृढ़ अंगों और शरीरों से (व्यशेमहि) भले प्रकार भोगें ।

व्याख्या०-हे देवेश्वर ! हमलोग कानों से सदैव कल्याण को ही सुनें । हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आंखों से कल्याण को ही सदा देखें। हे जगदीश्वर! हमारे सब अंग और उपाङ्ग दृढ़ रहें जिससे हम लोग स्थिरता से आप की स्तुति और आज्ञा का पालन सदा करते रहें तथा हम लोग दृढ़ आत्मा,

शरीर, इन्द्रियों को और विद्वानों की हितकारक आयु को विविध सुख पूर्वक प्राप्त हों ॥

स्तु०वि०—ब्रह्म जज्ञान प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २८ ॥ यजु०१३ । ३॥

पद०—ब्रह्म । जज्ञानं । प्रथमं । पुरस्तात् । विसीमतः । सुरुचः । वेनः । आवः । सः । बुध्न्याः । उपमाः । अस्य । विष्ठाः । सतः । च । योनिं । असतः । च । विवः ।

पदा०—जो (प्रथमं) आदि कारण (पुरस्तात्, जज्ञानं) सब से प्रथम प्रकट होने वाला (वेनः) आनन्दस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म है (सः) वह ब्रह्म (बुध्न्याः) अन्तरिक्षस्थ (सुरुचः) नक्षत्रों को (विसीमतः) मर्यादा में (आवः) बांधता (च) और (अस्य) इस जगत् के (योनिं) आदि कारण=प्रकृति को (सतः, असतः) स्थूल और सूक्ष्म (उपमाः) उपयुक्त (विष्ठाः) पदार्थों में (विवः) विभक्त करता है ॥

व्याख्या०—हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हैं, आपके तुल्य कोई नहीं, आप सब जगत् में व्यापक हैं, सब जगत् के आदि कारण आप ही हैं, सूर्य्यादि लोक सीमायुक्त= मर्यादापूर्वक आप से प्रकाशित हैं, इनको रचकर आप ही धारण कर रहे हैं, इन लोकों को विविध नियमों से पृथक् २ यथायोग्य चला रहे हैं। आप के आनन्दस्वरूप और आनन्ददाता होने से ऐसा कोई;

जन संसार में नहीं है जो आप की कामना न करता हो, किन्तु सभी आप को मिलना चाहते हैं। आप अनन्त विद्या युक्त हैं, आप ही सब प्रकार से सब के रक्षक हैं, और आप ही अन्तरिक्षान्तर्गत स्थूल, सूक्ष्म सब पदार्थों को मर्यादा पूर्वक विभक्त करते हैं, अर्थात् आप की आज्ञा से ही वह सब पदार्थ अपने २ व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं । हे पितः! सब वेद शास्त्र इस विविध जगत् का निमित्त कारण आप को ही कथन करते हैं, सो जगत् के माता पिता और हम लोगों के इष्टदेव आप ही हैं, अन्य कोई नहीं॥

प्रा० वि०—सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः॥ २९ ॥ यजु० ३६ । २३

पद०—सुमित्रिया । नः । आपः । ओषधयः । सन्तु । दुर्मित्रियाः । सन्तु । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यं । च । वयं । द्विष्मः ।

पदा०—हे न्यायकारिन्! (आपः) जल और (ओषधयः) अन्न (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः, सन्तु) सुखदायक हों, (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (यं) जिससे (वयं) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तस्मै) उसके लिये अन्न आदि पदार्थ (दुर्मित्रियाः) दुःखदायक (सन्तु) हों ।

व्याख्या०—हे न्यायकारिन्! परमात्मन्! आपका यह अटल न्याय है, कि आप के उत्पन्न किये हुये अन्न उस के लिये मित्र की

न्याईं सुखदायी होते हैं जो आपकी आज्ञा पर चलता है परन्तु जो आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके पापी बनता है उसके लिये वह अन्न शत्रु की भांति दुःखदायी होते हैं, सो आप ऐसी कृपा करें कि हम सृष्टि नियम के अनुसार चलकर आपके उत्पन्न किये हुए अन्नादि सब पदार्थों से सदा सुख लाभ करें, और जो लोग आपके प्रतिकूल चलते तथा आपके भक्तों को दुःख देते हैं उनके लिये वह पदार्थ दुःखदाई हों ताकि वह कुमार्ग में ठोकरें खाकर धर्म पथ पर आजावें ॥

स्तु० वि०--य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीददपिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां २॥आविवेश ॥३०॥यजु० १७।१७

पद०--यः। इमा। विश्वा। भुवनानि। जुह्वत्। ऋषिः। होता। न्यसीदत्। पिता। नः। स। आशिषा। द्रविणं। इच्छमानः। प्रथमच्छत्। अवरां। आ। विवेश।

पदा०-(यः) जो परमात्मा (ऋषिः) सर्वज्ञ (होता) कर्मफल-दाता (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (जुह्वत्) धारण करता और (न्यसीदत्) सब को निरन्तर स्थित तथा (अवरां) अपने से अन्य (प्रथमच्छत्) आकाशादि सब विस्तृत पदार्थों को (आ, विवेश) चारों ओर से आच्छादित किये हुए है (सः) वह परमात्मा (पिता) सर्वरक्षक होने के कारण (आशिषा) अपने आशीर्वाद से (द्रविणं) सब सम्पत्ति (नः) हमारे लिये (इच्छमानः) सदा चाहता है।

व्याख्या०-जो परमात्मा सब जीवों के कर्मों को यथार्थ रूप

से जानता हुआ यथायोग्य फल देता और आकाशादि सब विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ धारण कर रहा है उसी कृपालु परमात्मा की हमको शरण लेनी चाहिये अन्य की नहीं ॥

प्रा० वि०--इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मेनृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ ३१ ॥ यजु० ३८ । १४

पद०—इषे । पिन्वस्व । ऊर्जे । पिन्वस्व । ब्रह्मणे । पिन्वस्व । क्षत्राय । पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां । पिन्वस्व । धर्म । असि । सुधर्म । अमेनि । अस्मे । नृम्णानि । धारय । ब्रह्म । धारय । क्षत्रं । धारय । विशं । धारय ।

पदा०—हे परमेश्वर! आप हमको (इषे) उत्तम अन्न का सेवन करने के लिये (पिन्वस्व) पुष्ट करें (ब्रह्मणे) वेदविद्या सम्पादन के लिये (पिन्वस्व) पुष्ट करें (क्षत्राय) क्षात्रधर्म पूर्ण करने के लिये (पिन्वस्व) पुष्ट करें (द्यावापृथिवीभ्यां) द्युलोक तथा भूलोक का सुख भोगने के लिये (पिन्वस्व) पुष्ट करें (सुधर्म) । हे सुन्दर धर्मों वाले परमात्मन् ! आप (धर्म, अमेनि, असि) धर्मस्वरूप और निर्वैर हैं (अस्मे) हम में (नृम्णानि) निर्वैरता (धारय) धारण करायें (ब्रह्म, धारय) ब्राह्मण धर्म धारण करायें (क्षत्रं, धारय) क्षात्रधर्म धारण करायें (विशं, धारय) वैश्य धर्म धारण करायें ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! ऐसी कृपाकरें कि हम अरोग रहकर सदा सात्विक भोजन का सेवन करें जिससे हम उत्साह पूर्वक परोपकारादि कर्म करते हुए वेदविद्या का भले प्रकार सम्पादन करसकें और अपने २ वर्णाश्रम के धर्मों को पूर्ण करते हुए वैरभाव छोड़कर स[ब]से [प्र]ीतिपूर्वक वर्तें वर्त्तावें ॥

स्तु० वि०—किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णो महिना विश्वचक्षाः ॥३२ ॥यजु० १७।१८

पद०—किंस्वित् । आसीत् । अधिष्ठानं । आरम्भणं । कतमत्स्वित् । कथा । आसीत् । यतः । भूमिं । जनयन् । विश्वकर्मा । वि । द्यां । और्णोत् । महिना । विश्वचक्षाः ।

पदा०—प्रश्न—इस जगत् का (अधिष्ठानं) आधार तथा(आरम्भणं) बनाने वाला (कतमत्स्वित्) बहुतों में से कौन (किंस्वित्) क्या (आसीत्) है और वह (कथा,आसीत्) कैसा है? उत्तर—(यतः) जो (महिना) अपनी शक्ति से (भूमिं) भूमि को (जनयन्) उत्पन्न करके (वि, और्णोत्) भलेप्रकार थामें हुए है वही (विश्वकर्मा) सब का रचयिता तथा (विश्वचक्षाः) सब का द्रष्टा है ।

व्याख्या०—[इ]स मंत्र में प्रश्नोत्तर की रीति से बताया गया है कि इस जगत् का रचयिता तथा आधार एकमात्र परमात्मा है जो प्रकृतिरूप शक्ति से पृथिवी आदि लोकों को उत्पन्न करके भलेप्रकार थांम रहा है और वह अजन्मा, अविनाशी तथा निराकारादि विशेषण विशिष्ट है ॥

प्रा० वि०—तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण॥
॥ ३३ ॥ यजु० ३।१७

पद०—तनूपाः। अग्ने। असि। तन्वं। मे। पाहि। आयुर्दाः। अग्ने। असि। आयुः। मे। देहि। वर्चोदाः। अग्ने। असि। वर्चः। मे। देहि। अग्ने। यत्। मे। तन्वा। ऊनं। तत्। मे। आपृण।

पदा०—(अग्ने) हे ईश्वर ! आप (तनूपा, असि) सब शरीरों के रक्षक हैं (मे,तन्वं,पाहि) मेरे शरीर की रक्षा करें। (अग्ने) हे परमात्मन् ! आप (आयुर्दाः,असि) आयु के दाता हैं (मे,आयुः, देहि) मुझको आयु दें (अग्ने) हे परमात्मन् ! आप (वर्चोदाः,असि) तेज के दाता हैं (मे,वर्चः,देहि) मुझको तेज दें (अग्ने) हे परमात्मन् ! (यत्, मे, तन्वा) जो मेरे शरीर में (ऊनं) ऊनता=न्यूनता है (तत्, मे, आपृण) उस मेरी न्यूनता को पूर्ण करें।

व्याख्या०—हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! मैं आपका सेवक हूं, आप कृपाकरके मेरी रक्षा करें और आनन्दभोग के लिये पूर्ण आयु दें अर्थात् मेरे शरीर की निर्बलतादि को दूर करके तेज प्रदान करें जिससे मैं दुःखरहित होकर आनन्दपूर्वक सौ वर्ष जी सकूं॥

स्तु० वि०—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ ३४ ॥ यजु० १७।१९

पद०—विश्वतः। चक्षुः। उत। विश्वतोमुखः। विश्वतोबाहुः।

उत । विश्वतः । पात् । सं । बाहुभ्यां । धमति । सं । पतत्रैः । द्यावाभूमी । जनयन् । देवः । एकः ।

पदा०—(विश्वतः, चक्षुः) सर्वद्रष्टा (विश्वतोमुखः) सर्वोपदेष्टा (विश्वतोबाहुः) सर्वबलयुक्त (उत) और (विश्वतः,पात्) सर्वत्र प्राप्त (एकः, देवः) अद्वितीय देव है (उत) और वह (द्यावाभूमी) द्युलोक तथा पृथिवी को (पतत्रैः) प्रकृति के विकाररूप पंचभूतों से (सं, जनयन्) भलेप्रकार रचकर (बाहुभ्यां) बल-पराक्रमरूप भुजाओं से (सं,धमति) सम्यक् संयुक्त करता है ।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप सर्वद्रष्टा, सर्वोपदेष्टा, सब प्रकार के बलों से युक्त और सर्वव्यापक हैं, अन्य की सहायता के बिना ही आप पृथिवी आदि सब लोकों को प्रकृति के विकाररूप पंचभूतों से रचकर अपने ही बलपराक्रम से उनकी रक्षा कर रहे हैं ॥

प्रा० वि०—भूर्भुवः स्वः, सुप्रजाः प्रजाभिःस्याᳪं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्य प्रजां मे पाहि । शᳪंस्य पशून्मे पाहि । अथर्य पितुंमे पाहि ॥ ३५॥

यजु० ३ । ३७

पद०—भूः । भुवः । स्वः । सुप्रजाः । प्रजाभिः । स्यां । सुवीरः । वीरैः । सुपोषः । पोषैः । नर्य । प्रजां । मे । पाहि । शंस्य । पशून् । मे । पाहि । अथर्य । पितुं । मे । पाहि ।

पदा०—हे परमेश्वर ! आप (भूः) प्राणदाता, (भुवः) दुःख विनाशक और (स्वः) सुखदाता हैं, कृपा करें कि हम लोग (पोषैः)

पुष्टिकारक अन्न से (सुपोषः) पुष्ट होकर (प्रजाभिः) प्रजा से (सुप्रजाः) सुन्दर प्रजा वाले तथा (वीरैः, सुवीरः) वीरों से सुन्दर वीरों वाले (स्यां) हों (नर्य) हे श्रेष्ठ परमात्मन् ! (मे,प्रजां,पाहि) मेरी प्रजा की रक्षा करें (शंस्य) हे प्रशंसनीय परमात्मन् ! (मे, पशून, पाहि) मेरे पशुओं की रक्षा करें (अथर्य) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (मे, पितुं, पाहि) मेरे अन्न की रक्षा करें।

व्याख्या०—हे परमात्मन् ! आप सब के प्राणदाता, दुःख-भंजक और सुखकारक हैं, ऐसी कृपा करें कि हम लोग पुष्टिकारक अन्न के सेवन से पुष्ट होकर सुन्दर पुत्रपौत्रादि वीरों को उत्पन्न करसकें और हमारी सब सम्पत्ति की आप रक्षा करें ॥

स्तु० वि०—किᳮ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यातिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ३६ ॥

यजु० १७ । २०

पद०—किंस्वित् । वनं । कः । उ । सः । वृक्षः । आस । यतः । द्यावापृथिवी । निष्टतक्षुः । मनीषिणः । मनसा । पृच्छत । इत् । उ । तत् । यत् । अध्यतिष्ठत् । भुवनानि । धारयन् ।

पदा०—प्रश्न-(मनीषिणः) हे विद्वानो ! (किंस्वित) कौन (वनं) पूजनीय है और (उ) निश्चय करके (कः) कौन (सः) वह (वृक्षः) फलदाता (आस) है (यतः) जिससे (द्यावापृथिवी) प्रकाशवान् तथा प्रकाशरहित लोक (निष्टतक्षुः) अनेकविध रचे गये हैं (मनसा, पृच्छत) मन से पूछो ? उत्तर-(यत) जो (भुव-

नानि) लोक लोकान्तरों को (धारयन्) धारण करता हुआ (अध्यतिष्ठत्) उनमें विराजमान होरहा है (तव, यव) वही (उ) निश्चयकरके पूजनीय है ।

व्याख्या०—इस मंत्र में प्रश्नोत्तर की रीति से यह बताया गया है कि जो लोकलोकान्तरों को रचकर थामता और नियम में रखकर उनमें विराजमान होरहा है वही निश्चय करके पूजनीय है और वही उत्तम कर्मों का फल सुख और पाप कर्मों का फल दुःख देने वाला है ॥

प्रा०वि०—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥३७॥यजु०३६।२४

पद०—तत् । चक्षुः । देवहितं । पुरस्तात् । शुक्रं । उच्चरत् । पश्येम । शरदः । शतं । जीवेम । शरदः । शतं । शृणुयाम । शरदः । शतं । प्रब्रवाम । शरदः । शतं । अदीनाः । स्याम । शरदः । शतं । भूयः । च । शरदः । शतात् ।

पदा०—(तत्) परमात्मा (चक्षुः) सर्वद्रष्टा, (देवहितं) विद्वानों का हितकारी (पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व वर्त्तमान् (शुक्रं) सर्वशक्तिमान् और (उच्चरत्) सर्वव्यापक है, उसी की कृपा से हम लोग (शरदः, शतं) सौ वर्ष (जीवेम) जीवें (शरदः,शतं) सौ वर्ष (पश्येम) देखें (शरदः,शतं) सौ वर्ष (शृणुयाम) सुनें (शरदः,शतं) सौ वर्ष (प्रब्रवाम) बोलें (शरदः, शतं) सौ वर्ष (अदीनाः,स्याम) दीनतारहित हों और (भूयः) फिर (शरदः, शतात्) सौ वर्ष से

अधिक भी इसी प्रकार जीवन व्यतीत करें ।

व्याख्या०-जो परमात्मा सर्वद्रष्टा, विद्वानों का हितकारी, सृष्टि से पूर्व वर्त्तमान्, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है उससे हमारी प्रार्थना है कि वह ऐसी कृपा करे कि हम लोग पूर्ण आयु को प्राप्त हों अर्थात् सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवें, सौ वर्ष उसकी सुन्दर रचना का दृश्य देखें, सौ वर्ष उसकी स्तुति सुनें, सौ वर्ष उसके गुण गावें और दीनता से रहित होकर सौ वर्ष से अधिक भी इसी प्रकार जीवें ॥

प्रा०वि०—या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥३८॥यजु०१७।२१

पद०—या । ते । धामानि । परमाणि । या । अवमा । या । मध्यमा । विश्वकर्मन् । उत । इमा । शिक्ष । सखिभ्यः । हविषि । स्वधावः । स्वयं । यजस्व । तन्वं । वृधानः ।

पदा०—(स्वधावः) हे सामर्थ्यादि शुभगुणधारक (उत) और (विश्वकर्मन्) जगदुत्पादक! (ते) आपके (या) जो २ (परमाणि) उत्तम (या, अवमा) जो २ निकृष्ट (या, मध्यमा) जो २ मध्यम (धामानि) धाम हैं (इमा) इन सब का (शिक्ष) यथार्थज्ञान (सखिभ्यः) अपने उपासकों को देकर (स्वयं) आप ही उनको (हविषि) देने लेने योग्य व्यवहारों में (यजस्व) संगत करके (तन्वं) उनके शरीरों की (वृधानः) वृद्धि करें ।

व्याख्या०—हे शुभगुणधारक जगदुत्पादक परमात्मन् ! आप हमारे शरीरों को अरोग रखकर आप ही हमको बुरे

भले सब वास स्थानों और व्यवहारों का यथार्थ ज्ञान प्रदान करें। जिससे हम उनसे लाभ ही उठावें हानि कभी न उठावें ॥

प्रा० वि०—यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ ३९ ॥ यजु० ३६। २

पदा०—यत्। मे। छिद्रं। चक्षुषः। हृदयस्य। मनसः। वा। अतितृण्णं। बृहस्पतिः। मे। तत्। दधातु। शं। नः। भवतु। भुवनस्य। यः। पतिः।

पदा०—(यत्) जो (मे, चक्षुषः) मेरे नेत्रों तथा (हृदयस्य) प्राणात्मा की (छिद्रं) न्यूनता है (वा) अथवा (मनसः) मन की (अतितृण्णं) तुच्छता है (तत्, मे) उस मेरी न्यूनता को (बृहस्पतिः) परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें और (यः) जो (भुवनस्य) संसार के (पतिः) रक्षक परमात्मा हैं वह (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी (भवतु) हों।

व्याख्या०—हे आकाशादि महान् पदार्थों के ईश्वर परमात्मन्! जो मेरे नेत्र, प्राणात्मा, मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या आदि की निर्बलता, अथवा मन्दत्वादि विकार हैं इनका निवारण करके उनको धर्मादि में स्थापन करें, ताकि हम लोग आप की आज्ञापालन में यथार्थरूप से तत्पर हों। हे परमात्मन्! आपके विना हमारा कल्याणदाता कोई नहीं, हमको आपका ही आश्रय है, सो आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥

प्रा०वि०—विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता

विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् पर एकमाहुः ॥४०॥ यजु० १७ । २६

पद०—विश्वकर्मा । विमनाः । आत् । विहायाः । धाता । विधाता । परम । उत । सन्दृक् । तेषां । इष्टानि । सं । इषा । मदन्ति । यत्रा । सप्तऽऋषीन् । परः । एकं । आहुः ।

पदा०—जो (परम) सर्वशक्तिमान् (विहायाः) सर्वगत (विमनाः) सर्वज्ञ (सन्दृक्) सर्वद्रष्टा (विश्वकर्मा) सर्वरचयिता (धाता) सर्वधर्त्ता (आत्) और (विधाता) कर्मफलदाता परमात्मा है (उत) और (यत्रा) जिसमें निवास करके (तेषां) उसके (इष्टानि) प्रिय भक्त (इषा) मोक्षरूप रसों से (सं, मदन्ति) अति प्रसन्न होते हैं उस परमात्मा को सब शास्त्र (सप्तऽऋषीन्) सात इन्द्रियों से (परः) परे (एकं) अद्वितीय (आहुः) कथन करते हैं ।

व्याख्या०—जो सर्वशक्तिमान्, सर्वगत, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वरचयिता, सर्वधर्त्ता सबके कर्मों का फलदाता है और जिस में निवास करके उसके प्रिय भक्त मोक्षरूप रसों से अति प्रसन्न होते हैं, उस परमात्मा को सब शास्त्र सात ऋषे=पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि से परे कथन करके अद्वितीय मानते हैं ॥

प्रा० वि०--**चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः । स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥४१॥** यजु० ३८।२०

पद०—चतुःस्रक्तिः । नाभिः । ऋतस्य । सप्रथाः । सः ।

नः । विश्वायुः । सप्रथाः । सः । नः । सर्वायुः । सप्रथाः । अप । द्वेषः । अप । ह्वरः । अन्यव्रतस्य । सश्चिम ।

पदा०—(चतुःस्रक्तिः) चारों ओर से (ऋतस्य) सच्चाई का (नाभिः) केन्द्र परमात्मा (सप्रथाः) पुष्ट करे (सः) वह (नः) हमारी (विश्वायुः) सम्पूर्ण आयु को (सप्रथाः) पुष्ट करे (सः) वह (सर्वायुः) सब की आयु को (नः) हमारे लिये (सप्रथाः) पुष्ट करे ताकि (द्वेषः) सब का द्वेष (अप) दूर हो और (ह्वरः) कुटिल जनों तथा (अन्यव्रतस्य) धर्मविरोधियों का दुष्टभाव (अप, सश्चिम) सर्वदा नष्ट हो ।

व्याख्या०—हे महावैद्य=सर्वरोगनाशकेश्वर ! आपकी कृपा से मर्मस्थानरूप चार कोणों वाली नाभि सुखयुक्त होकर हमारी आयु बढ़े । जैसे आप सर्व सामर्थ्य से विस्तीर्ण हैं वैसे ही विस्तृत सुख युक्त आयु हम को दें । हे ईश ! हम आपकी कृपा से द्वेष तथा भय से रहित होकर आप से भिन्न किसी को भी ईश्वर न मानें, यह हमारी प्रार्थना स्वीकार हो ॥

स्तु० वि०—यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तᳬसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥४२॥

यजु० । १७ । २७

पद०—यः । नः । पिता । जनिता । यः । विधाता । धामानि । वेद । भुवनानि । विश्वा । यः । देवानां । नामधाः । एकः । एव । तं । सं । प्रश्नं । भुवना । यन्ति । अन्या ।

पदा०—(यः) जो (नः) हमारा (पिता) रक्षक और (जनिता) उत्पादक है (यः) जो (विधाता) फलदाता (विश्वा, भुवनानि) सब लोक लोकान्तरों तथा (धामानि) धामों का (वेद) ज्ञाता है और (यः) जो (देवानां) अग्नि आदि देवों का (नामधाः) नाम धारने वाला (एकः, एव) एक ही है (तं) उसी (सं, प्रश्नं) जानने योग्य परमात्मा को (भुवना) भुवन (यन्ति) भलेप्रकार जनाते हैं (अन्या) अन्य को नहीं ॥

व्याख्या०—हे मनुष्यो ! जो हम सब का उत्पन्न करने वाला तथा रक्षक है, जो सबमें विद्यमान होकर हमारे कर्मों का फलदाता तथा सब लोक लोकान्तरों का ज्ञाता है वही एक अग्नि आदि भिन्न २ नाम का धारण करने वाला है और उसी सर्वशक्तिमान परमात्मा का इस सृष्टि के अवलोकन करने से भलेप्रकार ज्ञान होता है, अन्य का नहीं, अतएव सबको उचित है कि सृष्टि की अद्भुत रचना से रचयिता को सर्वत्र व्यापक जानकर तन मन धन और आत्मा द्वारा प्रयत्न करके धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि करें ॥

प्रा० वि०—यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥ यजु० ३४ । १

पद०— यत् । जाग्रतः । दूरं । उत् । एति । दैवं । तत् । उ । सुप्तस्य । तथा । एव । एति । दूरं । गमं । ज्योतिषां । ज्योतिः । एकं । तत् । मे । मनः । शिवसंकल्पं । अस्तु ।

पदा०—(यत्) जो (दैवं) जीवात्मा का मन (जाग्रतः) जाग्रतावस्था में (दूरं) दूरस्थ पदार्थों का (उत्, एति) चिन्तन करता है (उ) और (तत्) वही मन (सुप्तस्य) सोये हुए का (तथा, एव) वैसा ही (एति) भीतर चिन्तन करता है, हे जगदीश्वर ! जो (दूरं, गमं) दूरस्थ पदार्थों का चिन्तन करने वाला और (ज्योतिषां) ज्ञानेन्द्रियों का (ज्योतिः) प्रकाशक है (तत्) वह (मे,मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पं,अस्तु) शुभ विचारों वाला हो ।

व्याख्या०—हे धर्मरूप परमात्मन् ! आपकी कृपा से मेरा मन कल्याण का संकल्प करने वाला हो, कभी अधर्मकारी न हो, यह मन अतिचंचल है आपकी कृपा से ही स्थिर होकर कल्याण कारक होसकता है अन्यथा नहीं, अतएव प्रार्थना है कि आप कृपा करके इस चञ्चल मन को हमारे वश में करें जिससे हम कुकर्मों में न फसकर सदैव धर्म में ही प्रवृत्त रहें ॥

उप० वि०—न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ४४ ॥ यजु० १७ । ३१

पद०—न । तं । विदाथ । यः । इमा । जजान । अन्यत् । युष्माकं । अन्तरं । बभूव । नीहारेण । प्रावृताः । जल्प्या । च । असुतृपः उक्थशासः । चरन्ति ।

पदा०—हे मनुष्यो!तुम (तं) उस परमात्मा को (न,विदाथ) नहीं जानते हो (यः) जिसने (इमा,जजान) इस जगत् को उत्पन्न किया और जो (अन्यत्) तुम से भिन्न (युष्माकं, अन्तरं) तुम्हारे

अन्दर (बभूव) विद्यमान है। क्योंकि तुम (नीहारेण) अविद्याऽन्धकार से (प्रावृताः) घिरे हुए (जल्प्या, च) और कुतर्कों में लगे हुए (उक्थशासः) कथनमात्र ही परमेश्वर का नाम लेते हुए (असुतृपः) प्राण पोषक बन कर (चरन्ति) विचरते हो।

व्याख्या०—यद्यपि परमात्मा हम सब के हृदय में विद्यमान हैं तो भी हम उनको नहीं जानते, क्योंकि केवल बाहर के आडम्बरों में फंसकर उन का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते, केवल वाद-विवाद करते रहते हैं वा कथनमात्र ही परमेश्वर का नाम लेते हुए केवल प्राण पोषण में लगे रहते हैं, सो हे भगवन् ! ऐसी कृपा करो, कि हम बाह्य आडम्बरों तथा वाद-विवाद को छोड़कर आप की भक्ति तन, मन, धन से करें और आपका नाम के महत्त्व अनुभव करते हुए तदनुसार जीवन बनावें॥

प्रा०वि०--भग एव भगवाँ२॥ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥ ४५ ॥ यजु० ३४।३८

पद०—भगः। एव। भगवान्। अस्तु। देवाः। तेन। वयं। भगवन्तः। स्याम। तं। त्वा। भगः। सर्वः। इत्। जोहवीति। सः। नः। भगः। पुरः। एता। भव। इह।

पदा०—(भगः, एव) परमैश्वर्य्यरूप परमात्मा ही (भगवान्, अस्तु) सब का स्वामी है (तेन) उसी की सहायता से (वयं, देवाः) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः, स्याम) ऐश्वर्य्यवान् हों (भगः) हे भगवन् ! (सर्वः, इत्) यह सारा संसार (तं, त्वा)

उस आप को (जोहवीति) यज्ञादिकों में पूजता है (सः) वह (भगः) ऐश्वर्य्यरूप परमात्मा ! (इह) इस लोक में (नः) हमारे लिये (पुरः, एता, भव) अग्रगामी हो।

व्याख्या०—हे सर्वाधिपति महाराजेश्वर ! आप परमैश्वर्य्यरूप होने से भगवान् हैं। हे विद्वानो ! उस भगवान् की सहायता से हमलोग ऐश्वर्य्ययुक्त होने का यत्न करें। हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण संसार आपको ही ग्रहण करने के लिये इच्छा करता है, सो आप कृपा करके हमको प्राप्त हों और अपनी कृपा से हम लोगों को परमैश्वर्य्य का लाभ यथावत् करावें ॥

प्रा० वि०—गणानां त्वा गणपतिᳬ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳬ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिᳬ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा-त्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥ यजु० २३। १९

पद०—गणानां। त्वा। गणपतिं। हवामहे। प्रियाणां। त्वा। प्रियपतिं। हवामहे। निधीनां। त्वा। निधिपतिं। हवामहे। वसो। मम। आ। अहं। अजानि। गर्भधं। आ। त्वं। अजा। असि। गर्भधं।

पदा०—(वसो, मम) हे मेरे वासदाता परमात्मन् ! (त्वा) आप (गणानां) गणों के मध्य (गणपतिं) गणपति हैं (हवामहे) मैं आपकी स्तुति करता हूं (प्रियाणां) प्रिय पदार्थों के मध्य (त्वा, प्रियपतिं) आप प्रियपति हैं (हवामहे) मैं आपकी स्तुति करता हूं (निधीनां) उत्तम पदार्थों के मध्य (त्वा, निधिपतिं) आप उत्तम पदार्थों के स्वामी हैं (हवामहे) मैं आपकी स्तुति करता

हूं (त्वं, गर्भधं) आप प्रकृतिरूप गर्भ के धारण करने वाले (अज) अजन्मा (आ, अभि) हैं (त्वा) आपको (गर्भधं) उस गर्भ के धारण करने वाले (आ, अजानि) जानें।

व्याख्या०—हे परमपिता परमात्मन्! आप सब मनुष्यादि गणों के पति, सब प्रिय पदार्थों के स्वामी और सब उत्तम पदार्थों की खान हैं, आप प्रकृति को कार्य्यरूप में परिणत करने वाले, अजन्मा और अनन्तादि विशेषण युक्त हैं, आप ऐसी कृपा करें कि हम आपको यथार्थरूप से उक्त गुणयुक्त जानें॥

प्रा० वि०—अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥४७॥

यजु० १।५

पद०—अग्ने। व्रतपते। व्रतं। चरिष्यामि। तत्। शकेयं। तत्। मे। राध्यतां। इदं। अहं। अनृतात्। सत्यं। उपैमि।

पदा०—(अग्ने, व्रतपते) हे व्रतों के स्वामी प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (व्रतं, चरिष्यामि) मैं व्रत धारण करता हूं (तत्, शकेयं) उस व्रत के पालन करने की मुझे शक्ति दें ताकि (तत्, मे, राध्यतां) वह मेरा व्रत दृढ़ हो (इदं) यह व्रत है कि (अनृतात्) झूठ छोड़ने से (सत्यं) सत्य को (उपैमि) प्राप्त होऊं।

व्याख्या०—हे सच्चिदानन्द स्वयंप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने! मैं सत्यकथन, ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासादि सत्य व्रतों को धारण करता हूं, सो आप कृपाकरके इस व्रत को सम्यक् दृढ़ करायें ताकि मैं अनृतादि व्यवहारों को छोड़कर

यथार्थ सत्यविद्या को प्राप्त करके आपको उपलब्ध कर सकूं ॥

स्तु० वि०—य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४८॥ यजु० २५ । १३

पद०—यः । आत्मदाः । बलदाः । यस्य । विश्वे । उपासते । प्रशिषं ! यस्य । देवाः । यस्य । छाया । अमृतं । यस्य । मृत्युः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।

पदा०—हे मनुष्यो ! जो (आत्मदाः) प्राणदाता और (बलदाः) बलदाता है (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते और (यस्य) जिसके (अमृतं) मोक्ष तथा (मृत्युः) मृत्यु (छाया) आश्रित हैं (कस्मै) उस सुख स्वरूप (देवाय) देव की हम सब (हविषा, विधेम) श्रद्धा भक्ति से उपासना करें ।

व्याख्या०—वह पूर्ण परमात्मा जो प्राण तथा शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल का देने वाला है, सब विद्वान् लोग जिसकी उपासना करते और जिसकी शिक्षा को मानते हैं, और मोक्ष तथा मृत्यु जिस के अधीन हैं, अथवा यों कहे के जिसका आश्रय मोक्षदायक और अनाश्रय मृत्युजनक है, ऐसे उत्तम पदार्थों के दाता परमात्मा की प्राप्ति के लिये हम लोग अन्तःकरण से उसकी आज्ञा का पालन करें, यही उस की उपासना है ॥

प्रा० वि०—उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंय्योः शंय्योः ॥४९॥ यजु० ३ । ४३

पद०—उपहूताः । इह । गावः । उपहूताः । अजावयः । अथो । अन्नस्य । कीलालः । उपहूताः । गृहेषु । नः । क्षेमाय । वः । शान्त्यै । प्रपद्ये । शिवं । शग्मं । शंयोः । शंयोः ।

पदा०—हे परमेश्वर ! आप (इह) यहां (नः) हमारे (गृहेषु) घर में (गावः) गौ (अजावयः) बकरी, भेड़ आदि पशु (उपहूताः) प्राप्त करायें (अथो) और (अन्नस्य) औषधियों के (कीलालः) रस (उपहूताः) प्राप्त करायें। हे परमेश्वर ! (क्षेमाय) शारीरिक कुशलता तथा (शान्त्यै) आत्मिक आनन्द के लिये (वः) आपको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं (शग्मं) शारीरिक तथा (शिवं) आत्मिक (शंयोः, शंयोः) दोनों प्रकार का सुख (उपहूताः) प्राप्त करायें ।

व्याख्या०—हे परमपिता परमात्मन् ! आप अपनी कृपा से हमको शारीरिक तथा आत्मिक सुख प्राप्त करायें, अर्थात् गाय, भेड, बकरी और अश्वादि पशु तथा पुष्कल अन्न दें जो शारीरिक कुशलता देकर ब्रह्मज्ञान प्राप्ति द्वारा मुक्ति सुख का अधिकारी बनायें, यही आपसे प्रार्थना है ॥

प्रा० वि०—मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳसन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५० ॥ यजु० २।१०

पद०—मयि । इदं । इन्द्र । इन्द्रियं । दधातु । अस्मान् । रायः । मघवानः । सचन्तां । अस्माकं । सन्तु । आशिषः । सत्याः । नः । सन्तु । आशिषः ।

पदा०—(इन्द्र) हे ईश्वर ! आप (इदं) इन (इन्द्रियं) इन्द्रियों को (मयि) मेरे में (दधातु) धारण करायें (मघवानः) सब धनों

का स्वामी परमात्मा (अस्मान्) हमको (रायः) उत्तम धन (सचन्तां) प्राप्त करायें (अस्माकं) हमारी (आशिषः) आशायें (सत्याः, सन्तु) सत्य हों (नः) हमारी (आशिषः) आशायें (सन्तु) पूर्ण हों।

व्याख्या०—हे परमैश्वर्यवान् ईश्वर! हमको बलवान् इन्द्रियां और उत्तम धन प्राप्त करायें। हे सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले परमात्मन्! आपकी कृपा से हमारी शुभ आशायें पूर्ण हों॥

प्रा० वि०—सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषᳫं स्वाहा॥५१॥यजु०३२।१३

पद०—सदसः। पतिं। अद्भुतं। प्रियं। इन्द्रस्य। काम्यं। सनिं। मेधां। अयासिषं। स्वाहा।

पदा०—हे ईश्वर! आप (सदसः) सभा के (अद्भुतं) आश्चर्यरूप (पतिं) स्वामी (इन्द्रस्य) जीवात्मा की (प्रियं, काम्यं) प्रिय कामनाओं के योग्य हैं, मैं आपसे (सनिं) धन और (मेधां) बुद्धि (अयासिषं) मांगता हूं (स्वाहा) यह मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

व्याख्या०—हे विद्यामय सभापते न्यायकारिन्! आप हमारी सभाओं के नियन्ता होकर सबको न्याय पथ पर चलायें। आप आश्चर्यस्वरूप तथा विचित्रशक्ति सम्पन्न हैं, आप ही जीवों की कामना को पूर्ण करनेवाले तथा सम्पूर्ण पदार्थों के निधि हैं, सो आप अपनी कृपा से हमको सब प्रकार का उत्तम धन, विद्या तथा सत्य धर्मादिकों को धारण कराने वाली बुद्धि दें, यह आपसे हमारी विनयपूर्वक प्रार्थना है॥

प्रा० वि०—यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥५२॥

यजु० ३२ । १४

पद०—यां । मेधां । देवगणाः । पितरः । च । उपासते । तया । मां । अद्य । मेधया । अग्ने । मेधाविनं । कुरु । स्वाहा ।

पदा०—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (यां, मेधां) जिस विज्ञानवती बुद्धि को (देवगणाः) विद्वान् लोग (च) और (पितरः) ज्ञानी लोग (उपासते) चाहते हैं (तया, मेधया) उस बुद्धि से (अद्य) आज (मां) मुझको (मेधाविनं, कुरु) बुद्धियुक्त करें (स्वाहा) यह मेरी प्रार्थना स्वीकार हो ।

व्याख्या०—हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती=यथार्थ धारणावाली बुद्धि को विद्वान् लोग धारण करते हैं तथा जिस बुद्धि को ज्ञानी लोग आश्रितकर आपको प्राप्त होते हैं, कृपया उस बुद्धि से हमको युक्त करें, ताकि हम आपको उपलब्ध करसकें ॥

प्रा० वि०—मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ ५३ ॥ यजु० ३२ । १५

पद०—मेधां । मे । वरुणः । ददातु । मेधां । अग्निः । प्रजापतिः । मेधां । इन्द्रः । च । वायुः । च । मेधां । धाता । ददातु । मे । स्वाहा ।

पदा०—(वरुणः) पूजनीय परमात्मा (मे) मुझको (मेधां, ददातु) उत्तम बुद्धि दें (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और (प्रजापतिः) जगत्स्वामी परमात्मा (मेधां) उत्तम बुद्धि दें (च) और (इन्द्रः) सर्वैश्वर्य्ययुक्त (वायुः) परमपवित्र परमात्मा (मेधां) उत्तम बुद्धि (ददातु) प्रदान करें ।

व्याख्या०—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप आनन्दस्वरूप और आनन्ददाता हैं, विज्ञानमय और विज्ञानप्रद हैं, सब संसार के अधिष्ठाता और पालक हैं, परमैश्वर्य्यवान् और ऐश्वर्य्य दाता हैं, परमपवित्र और अनन्त बलवान् हैं, सब के धारण पोषण करने वाले हैं, कृपाकरके हमको ऐसी बुद्धि दें कि जिस से हम सर्वविद्या सम्पन्न हों, यह हमारी बारम्बार प्रार्थना है ॥

स्तु०वि०—इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥५४॥
यजु० ३२ । १६

पद०—इदं । मे । ब्रह्म । च । क्षत्रं । च । उभे । श्रियं । अश्नुतां । मयि । देवाः । दधतु । श्रियं । उत्तमां । तस्यै । ते । स्वाहा ।

पदा०—हे ईश्वर ! ऐसी कृपाकरें कि (ब्रह्म) ब्राह्मणों का विज्ञान (च) और (क्षत्रं) क्षत्रियों की शूरवीरता (इदं) यह (उभे,श्रियं) दोनों उत्तम गुण (मे) मुझको (अश्नुतां)प्राप्त हों (देवाः) मेरी इन्द्रियां (श्रियम्,दधतु) उत्तम शोभा को धारण करें (तस्यै) इसके लिये (ते) आप से (स्वाहा) मैं प्रार्थना करता हूं, स्वीकार हो।

व्याख्या०—हे परमात्मन्!कृपाकरके ब्राह्मण वर्णका विज्ञान और क्षत्रिय वर्ण की शूरवीरता यह दोनों उत्तम गुण हमको प्रदान करें और ऐसी कृपा करें कि हमारी इन्द्रियां शुभकर्मों में प्रवृत्त होकर हमारी शोभा को बढ़ाने वाली हों, यह हमारी सच्चे हृदय से प्रार्थना है॥

इति द्वितीयःप्रकाशः समाप्तः

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

शुद्धाऽशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	११	(विजानाहि)	(विजानीहि)
२७	११।१६	अबडयै	अवयै
२७	१२।१६	उपडयै	अपयै
३०	२०	दुर्मानि	दुर्गानि
४३	१६	देव	देवो
४५	१४	हमान्तं	महान्तं
४५	१८	हमारें	मारें
,,	,,	मारे	हमारे
४६	१२	भा	मा
४६	१३	सदाम्	सदम्
४८	२०	भदं	भद्रं
६०	५	अण्ड	अणु
६७	१८	(बम्भरिः, ...	(बम्भारिः,

$$\text{Amount of depreciation} = \frac{\text{Cost of Asset} - \text{Scrap value}}{\text{Life of Asset in years}}$$

The same amount will be charged as yearly depreciation for total life of asset. If it is used for months then the amount can be calculated proportionately.

Step by step procedure evolved from the strategy described above is given below.

Procedure:

1. Input value of asset (C)
2. Input scrap value after use (S)
3. Total depreciable amount (V) = C - S)
4. Input estimated life in years (n)
5. Yearly depreciation (D) = V/n
6. Print the result.

For another machine/asset again 'RUN' Command will be given.

Name of Program: "Charging depreciation on assets"-II

Working Method:

Various assets are purchased by us. The value of assets deteriorates due to passage of time and use. This deterioration will be fast in the early years of life of asset and slow at the last. Therefore, sum of the digits method of charging depreciation is logical.

Under this program a machine costing Rs.35,000 is assumed to be purchased which had scrap value of Rs.550/- after 14 years. For charging depreciation under 'sum of the degits method, first, the sum of the year's digits must be calculated as S = 1 + 2 + 3 + ...14. Second the total amount of depreciation must be calculated as A = Rs.35,000 - Rs.550, and in each of the 14 years, the depreciation will be:

Year	Depreciation
1	(A * 14)/S
2	(A * 13)/S
3	(A * 12)/S
4	(A * 11)/S
⋮	
14	(A * 1)/S

The multiplying terms is each set of parentheses (i.e. 14, 13, 12-1) is always (15 - the number of the year). This plays crucial role in designing the program.

Procedure

1) Print the headings "Year" and "depreciation".
2) initialize the values of number of years (Y 1), total depreciable amount (A), and starting value of the sum of digits.
3) Calculate the sum of the digits with an accumulator.
4) The formula for depreciation is initiated and used repeatedly.
5) The result is printed.

```
10 Print "Year", "Depreciation"
20 Let Y1 = 14
30 Let S = 0
40 Let A = 35000 - 550
50 For Y = 1 to Y1
60 Let S = S - Y
70 Next Y
80 For Y = 1 to 14
90 Let D = A * (15-Y)/S
100 Print Y, D
110 Next Y
120 End.
```

Name of Program:

" Payment of Mortgage Loan in instalment".

Working Method:

Loans are borrowed which are paid with interest after a certain period and heavy amount is required for it. For making the loan soft it may be paid in equal instalments. Every instalment involves payment of interest on outstanding amount and repayment of some principal. After obtaining loan at a certain rate it becomes difficult to arrive at proper instalment as it involves complicated calculations.

A computer program however can be particularly useful in calculating the value of instalment and examining the effect of changing the variables to assist in choosing the most suitable amount of instalment.

Annual instalment required on mortgage can be calculated with following formula:

$$\text{Amount of Instalment} = \frac{P.I\ (1 + I)^n}{(1 + I)^n - 1}$$

P: Principal - the amount borrowed.

I: Interest rate per annum, and

n: duration of mortgage.

Montly instalments are usually 1/12 of the annual instalment. For examining alternative options of loan we have to change p, n or I, as required. At the time of changes the current values are also to be reminded.

Step by step procedures evolved from the strategy described above is given below:

Procedure:

1. Input rate of interest (I)
2. Input amount of mortgage loan (P)
3. Input period of loan (N).
4. Amount of instalment(R) = $\frac{P*I*(1+I)^N}{(1+I)^N - 1}$
5. Monthly repayments = R/12
6. Print the results
7. Now input I, P or N to revise or start

Basic Program:

```
10    DEF FNM (x) = INT (x/.01 + .5) * .01
20    Print "Enter Interest Rate as % " ;
30    Input I
40    Let I = I/100
50    Print "Enter size of Mortgage";
60    Input  P
70    Print "Enter Period of Loan (years)";
80    Input  N
90    Let R = (P* I* (1 + I)  N)/( ( ( 1 + I)  N) - 1)
100   Print "Monthly Repayments="; FNM (R/12)
110   Print
120   Print "Enter I, P or N to revise"
130   Print "Interest, Prindipal or years"
140   Print "Existing values are"
150   Print 1, P, N
160   Print "or enter S to stop "
170   Input A $
180   If A $ = "S" Then 330
190   Print "Enter Revised Values";
200   Input  X
210   If A $ = "I" then 270
220   If A $ = "P" Then 290
230   If A $ = "N" then 310
240   Print "Revision Error: "; A $" Entered"
250   Print
260   Goto 120
270   Let I = x/100
280   Goto 90
290   Let P = x , 300 goto 90, 310 Let N = x,
      320 Goto 90, 330 END.
```

Name of Program: Calculation of percentage marks.

Working Method:

In a test the answerscripts of four subjects, say English, Physics, Chemistry and Mathematics may be valued for different maximum marks. But for comparision it is necessary to convert the marks into percentages.

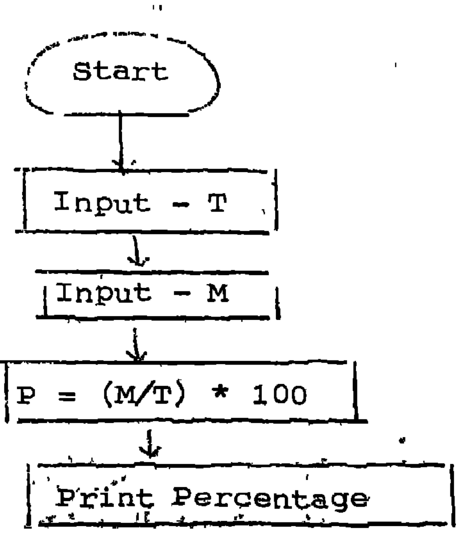
For conversion of marks into percentages, the marks secured are divided with total marks of the subject and the quotient is multiplied by 100. In this way the marks of allthe four subjects are converted to a common 101 point scale and comparision becomes possible.

Similarly the marks obtained by different students may also be converted in percentages for comparision. Step-by-step procedure evolved from the strategy described above is given below.

Procedure

1) Input maximum marks (T)
2) Input marks obtained (M)
3) Percentage = (M/T) X 100
4) Write the result.
5) Repeat the process from step (2) till desired.

Flow Chart:



Basic Program:

Either

```
10      Rem * Marks into percentages *
20      Print "Maximum Marks"
30      Input T
40      Print "Marks obtained"
50      Input M
60      P = ( M/T ) * 100
70      Print "Percentage"; P
80      GoTo 40
  Run
```

Program can not be stopped without 'BREAK'

OR

```
10      Input 'T'
20      Input 'M'
30      If M = 51 then 70
40      P = (M/T) * 100
50      Print P
60      Goto 20
70      End
  Run
```

Any condition can be written at '30'.

Name of the Program: "Conversion of measurements in inches to centimeters and centimeters to inches".

Working Method:

Height, length etc., are measured in inches and centimeters. Sometimes, for the purpose of comparision, the expressions of inches are to be changed to centimeters or vice-versa.

For conversion of inches to centimeters, the length of n inches is multiplied with 2.54 or n inches = 2.54 n centimeters.

For conversion of centimeters to inches the length of n centimeters is multiplied with .3937 to arrive at the inch value. or n centimeters = .3937 inches.

Step-by-step procedure evolved from the strategy described above is given below:

Procedure:

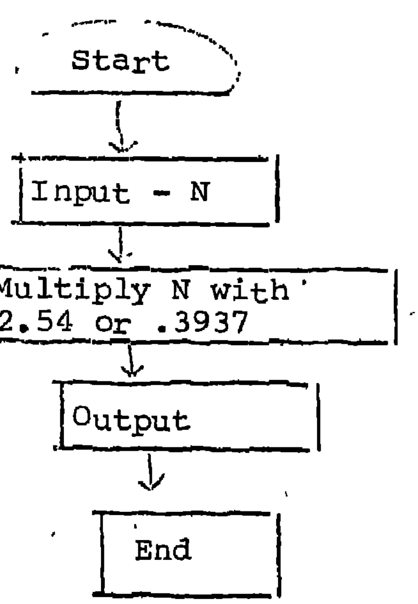
(a) Inches to centimeters:

1. Input n
2. Multiply n with 2.54
3. Write the result.

(b) Centimeters to inches:

1. Input n
2. Multiply n with 3937
3. Write the result.

Flow Chart:



Basic Program:

(A) Inches to Centimeters:

```
10 Input I
20 Let C = I x 2.54
30 Print C
40 End.
```

Or

```
10  REM * INCHES TO CENTIMETERS *
20  Print "Enter Next Length in Inch".
30  Input I
40  Let C = I x 2.54
50  Print "This Length in Centimeters is"; C
60  End.
```

(B) Centimeters to Inches

```
10  Input C
20. Let I = C x .3937
30  Print I
40  End.
```

Or

```
10  REM * Centimeters to Inches *
20  Print "Enter Next Length in Centimeters"
30  Input C
40  Let I = C x .3937
50  Print "This Length in Inches is"; C
60  End.
```

The advances made in software and program development have made the use of Computers very easy even for a layman. Now-a-days readymade computer software packages are available that permit interaction

between the computer and it's user in a very simple manner. Although a very large number of software packages are available for various applications but word processing, Electronic Spreadsheet and Data Base Management system are the most commonly used in the area of business. For the interest and use of teachers and students the task of development of Computer program is not difficult.

*****

CONTINUOUS AND COMPREHENSIVE EVALUATION

Dr.P.Das,
Reader in Education,
R.C.E.,Bhubaneswar.

The present system of evaluation does not adequately reflect the total growth/progress of the students. From the existing practices and from our long term expeience, it is not difficult to pin-point some of the major shortcomings which need to be properly appreciated and accepted before taking up any plan of evaluation improvement. In a summerised way we can list out these as under:

1. Concept of evaluation is restricted to examination rather than a broad comprehensive concept of evaluation.
2. Evaluation is considered as end of the course/session rather than as an integral part of teaching-learning process.
3. Evaluation is considered as an act of measurement of students' learning rather than a means for improvement of their learning.
4. Evaluation activities are limited to scholastic aspect rather than total growth of the child.
5. Use of tools & techniques is limited to written examinations largely.
6. Quality of written examinations is questionable from the point of view of validity and reliability.
7. Diagnostic evaluation is still a dream of the future.
8. Using evaluation as a feedback has yet to become a reality for improving students' learning.
9. Evaluation is never conceptualised as objective-based, comprehensive, continuous, cooperative and dynamic process.

You may add many more glaring shortcomings of the existing system of evaluation. What is really woth stating is the cause of all these ills. The cause may lie with the teachers or the educational system in general. Therefore, there is an imperative need to make evaluation an integral part of the total teaching-learning process and to make testing continuous and comprehensive by taking care of all the three domains (Cognitive,

affective and psychomotor) for all round development of the learner in both scholastic and non-scholastic areas. In view of the above, the concept of evaluation can be developed.

<u>Concept of Evaluation</u>- The concept of evaluation should not be equated with the concept of examination or mere measurement. Broadly defined, educational evaluation is the quantitative and qualitative estimation of the overall growth and progress of pupils towards objectives or values in the curriculum and is concerned with values judgement and decisions making for improving. teaching-learning process. The emphasis is evaluation is upon broad personality changes and major objectives of an educational programme. These include not only scholastic achievements, but also non-scholastic areas like attitudes, interests, ideals, ways of thinking, health, work habits, personal and social adaptability. Hence evaluation is integrally related to the teaching-learning process. It entails a value judgement and works as a quality control in educational programmes.

<u>Purposes of Evaluation</u>- Mainly evaluation helps in:

a) determining the effectiveness of courses and programmes.
b) testing assumptions about instructional practices.
c) selecting, clarifying and appraising objectives.
d) creating motivation.
e) to assess total progress of the child.
f) serving as a feedback for both teachers and students for effective teaching and learning respectively.
g) discriminating and ranking the students.
h) diagnosing pupils weakness/learning difficulties.
i) providing basis for guidance and counselling.

<u>Criteria of Good Evaluation</u>- The criteria of good evaluation emerge naturally from the basic assumption about evaluation. They can be enumerated as follows:

a) Evaluation should be objective-based: The evaluator should define or spellout clearly the set of objectives to be evaluated. The objectives may be knowledge, understanding, application, skills, attitudes, interests health, work habits, personal and social adjustment etc.

b) Evaluation should be a comprehensive process: Evaluation should cover both scholastic and non-scholastic dimensions of pupils' growth and use variety of appropriate tools and techniques of evaluation.

c) Evaluation should be a continuous process: Since evaluation aims at estimating overall growth of the child and basically growth is a continuous phenomena, it is imperative to make evaluation regular and continuous.

d) Evaluation should be a dynamic process: The approach of evaluation should not be rigid, static in nature. It should be flexible and dynamic in respect of frequency of examinations, and type of examinations etc.

e) Evaluation should be a cooperative process: Since the emphasis of evaluation is on all aspects of pupils progress, a single teacher is not competent to do justice for evaluation of all the dimensions of pupils' growth and hence the cooperation of all teachers, students and parents is essential.

Planning and Implementation Modalities of evaluation:

The following steps are suggested about the modalities of school evaluation:-

a) Determining theareas (hoth from scholastic and non-scholastic) and identifying the appropriate objectives under each area to be evaluated.

b) Selecting/preparing tools and techniques of evaluation. (Tools may include achievement test, diagnostic test, psychological tests, checklist, ratingscale, records, and techniques may be in form of written, oral and practical examination).

c) Determining the periodicity of evaluation - Inorder to make evaluation continuous, periodicity of evaluation both in scholastic and non-scholastic area should be decided much in advance.

d) Executing the plan - Collection of informations or evidences may be done by using the tools and techniques already decided above.

e) Recording the results - Progress report cards both in scholastic and non-scholastic areas should be developed in order to record the results.

f) Using the results for instructional decision - The results of the evaluation may be effectively used for improving classroom instructions.

Scheme for comprehensive evaluation - The scheme of comprehensive evaluation may include the following aspects of pupils' growth and activities:

Scholastic Aspect

Area	Periodicity	Tools & Techniques
Curricular areas	Five time in a year	- Written examination - Oral examination - Practical examination - Achievement Test - Diagnostic Test
Intelligence	Once at the begin-ing of the primary/Middle/Secondary stage	- Intelligence Test

Non-Scholastic Aspects

Personal and Social Qualities		
- Regularly - Punctuality - Discipline - Habit of cleanliness - Emotional Stability - Initiative - Sense of responsibility - Industry - Sprit of Social Service - Any other	Daily/Monthly	- Observation - Anecdotal Record - Rating Scale - Observation - Anecdotal Records - Rating Scale
Interests		
- Literary - Scientific - Musical - Artistic - Social Services - Any other	Monthly/Yearly	- Observation - Rating Scale - Anecdotal Records

Attitude

- Towards Teachers	Daily/Monthly	- Observation
- Towards studies		- Questionnaire
- Towards school-mates		- Interview
- Towards School		- Rating Scale
- Any other		

Physical Health

- Height	Twice in a year	- Observation
- Weight		- Interview
- Chest		- Medical Check-up
- Physical defects, if any		

- Activities

Literary and Scientific activities

- Library	Twice/Thrice	- Observation
- Debate		- Anecdotal Record
- Recitation		- Rating Scale
- Creative Writing		
- Science Club		
- Any other		

Cultural Acativities

- Drama	Halfyearly/yearly	- Observation
- Music		- Anecdotal Record
- Dance		- Rating Scale
- Drawing & Painting		
- Anyother		

Out Door acativities

- Games	Half yearly/yearly	- Observation
- Sports		- Acecdotal Record
- Scouting		- Rating Scale
- N.C.C.		
- First Aid		
- Gardening		

The above guidelines attempt to indicate major directions in which the programme of evaluation deserves to move so as to realise the purpose of education. Orientation of teachers towards the new directions of continuous and comprehensive evaluation will not improve the system unless teachers tries to implement the scheme with sincerity and honesty.

The following follow-up action is suggested:

1) Organisation of Orientation programmes for teachers about the new directions of evaluation.

2) Keeping in view the school conditions, the scheme of evaluation may be defined and implemented on cooperative basis.

3) There should be regular supervision of the school evaluation programme and assistance may be provided to the teachers when they face any operational problems.

4) Format of progress cards may be developed and may be supplied to all schools for uniform record of results.

5) Action research relating to various aspects of evaluation may be undertaken, the findings of which will be taken as feed back for improving evaluation system.

.....

EVALUATION IN VOCATIONAL EDUCATION

Ramakar Raizada,
Lecturer
R.C.E., Bhubaneswar

Teaching of any subject should be learner centered, specially in vocational education. Students have to be educated according to their age, aptitude and abilities. Evaluation becomes a necessary tool in the educational process and it is a positive function. It should not create a fear and a failure complex in students.

Evaluation in vocational courses is more specialised job. In addition to theoritical knowledge, it is essential to evaluate the performance and personality characteristics Skill development is one of the most important aspect of vocational education which is not instant and happens or takes place over a period of time. It is suggested that instructional objectives, based on the desired vocational competencies should be clearly spelt out for each vocational course. The scheme of evaluation should take these objectives in account and the total evaluation structure should comprise of comprehensive and continuous assessments of vocational students.

A comprehensive continuous evaluation should assess the progress of students individually in the following areas:

(a) Scholastic Achievements

(b) Performance in skill areas

(c) Products produced by student.

There is need to give higher weightage to the quality aspect in vocational education in the system. It is difficult to define quality particularly with reference to educational process. In our Indian situation everything in education is sub-ordinated to examination and

grading, the quality aspect will receive no attention unless a balanced system of evaluation including varied procedures is used for evaluating student's progress in vocational education.

In evaluation of student's progress in vocational education basic competencies and learning of skills is to be emphasized. Evaluation should be continuous one, it should be at several points of time to give immediate feedback to the teachers and students. Students should know from time to time, what they have learned? How much they have learned? and How well they have learned ? The teacher should know from evaluation, what his instruction has done?, Where his instruction has failed ? and where his instruction needs change?, so that all the students are able to master the skill. Hence, evaluation should be done by the teacher himself continuously during the academic session. There should be the component of internal assessment specially for practical portion of vocational programme and at least 20% weightage should be given to the internal assessment. Need for proper evaluation of practical skills can not be denied. Some important points for practical skill evaluation are:

(a) at the time of evaluation not only the product but process of performance should also be given importance. Such evaluation should involve identification of various logical steps in performing different jobs and practicals. Observational evaluation of the student through these, besides the evaluation of final outcome, is necessary. Such an approach develops scientific attitude in the student.

develops so... attitude in the student.

(b) in the course of practical examination a number of small jobs or practicals should be set for a student to do. It will provide a comprehensive coverage of the skill which students are expected to develop.

(c) the scoring should be objective in place of subjective or arbitrary scoring. This may be attempted to be accomplished through the development of detailed marking scheme, for accessing the various steps or the processes involved in a job or practical.

Those connected with educational evaluation, one or the other way feel strongly that traditional approaches, practices and procedures are doing more harm, than good to students. It has given rise to number of malpractices, including the frequent use of unfair means. It is mainly because of giving more importance to examinations than they really desirve.

In real sense evaluation should be integral part of teaching-learning process giving importance to the three domains-cognative, affective and psychomotor for all round development of learner in both scholastic and non-scholastic areas. The traditional examination system takes the cognisance of the scholastic area only which is not appropriate in curent circumstances and specifically for vocational education. The emphasis should now shift from classifying the learners into classes and divisions in examination to assessment of the progress made by the learner, his potentials and weaknesses for taking necessary steps to bring about

the desired growth. For vocational subjects, there is need of more emphasis on practical aspect and the assessment is to be primarily done internally at school level by vocational teachers and not by any external agency. Evaluation should become the basis of continuous review and revision the instructions till the desired level of efficiency is reached.

National Policy on Education, 1986 emphasised for use of grades in place of marks in examination. It is much more appropriate in the area of vocational education. The centrally sponsored scheme on vocational education has given the following recommendations for evaluation:

"The performance of students in vocational courses will have to be periodically and continuously evaluated. This should be conducted through the concerned full time teachers of the courses and by involving part time teachers and the concerned collaborating agency. The school should keep a permanent record of such evaluation and the same should be annexed to the certificate. awarded by the Board. Besides the internal evaluation suggested the board should also conduct a final external examination following the same mechanism as for academic stream. In both the internal and terminal evaluation, assessment of practical skills acquired will be a very important component, to be judged primarily by practical work/assignment. Since the employability of the vocational graduates would depend largely on the reputation, the school is able to make for it's courses rather than on the state wide picture, continuing and intensive efforts willbe necessary to help each vocational school develop it's own identity and attain a level of excellence".

So, the followings should be involved in the evaluation work of vocational students:

- Vocational teacher(s)
- Principal
- Training place station Supervisors/Foreman
- Employer of the areas
- External Examiners (among the aboves).

A vocational teacher needs to use variety of tools and techniques of evaluation to suit the needs of varying situations. There are many devices such as oral test, written test, practicals, observations. A description of these devices follows here under:

Devices of Evaluation:

1. Oral Tests:

Oral test is a face to face question answer activity between the examiner and the examinee. The examiner asks questions and examinee attempts to answer them. The examiner proves with the further questions or accepts the answers. Finally the examiner judges the quality of the answers and grades the examinee accordingly. Oral test is a valuable technique for the assessment of practical skills, projects etc. and for an indepth study of student's learning and has great significance in vocational education where practical skills are much more important. Properly devised and used oral tests may be both a good instrumental technique and a valuable means of evaluating students progress in vocational education. It helps in testing students knowledge, understanding, application of knowledge and diagnosing student's weaknesses onthe spot.

Rationale:

Evaluation provides a long array of tools and techniques for testing students. Among these tools oral tests are of great significance. The powerful potential of this tool which was realised in ancient times through out the world need to be utilised in full inthe area of vocational education. The most important bearing it has on vocational education that it throughs light on 'process' as well as 'product'.

Language, both spoken and written would remain a significant mode of communication for all the times. Oral communication is more natural, more frequently resorted to and is a natural medium for social interaction. Strangely enough we ignore this potential tool of evaluation and underly depend on written examinations. If the teacher community accepts the challenge of realising the full potential of oral examination, all the constraints in it's implementation can be easily overcome.

Objectives:

1. To enable the pupil to approach and negotiate problems set in a form of questions in an examination in a worthwhile manner.

2. To identify and analyse the vunerable areas of student's insight specially contributing to his/her creative responses to any item of learning.

3. To stimulate student's interest in exploring newer and finer avenues of performance, comparision and contrast.

4. To reduce considerably if not altogether the emphasis laid on memory in the traditional examination.

5. To make the examination more comprehensive in nature by providing for testing wider abilities, areas.

6. To identify and analyse student's presence of mind as exposed through oral questioning.

7. To prove into students the insight that derects and focuses on his/her skill in appreciating and critically analysing items of creative activities in them.

8. To evaluate student's spontaneity, mannerism, presence of mind and presentation.

9. To upgrade the teaching learning process by shifting the emphasis from mere transmission of information to the development of abilities thatwould help the pupil in his later stage of life.

10. To boost the analytical and divergent approach to problems that necessitate finer creativity and critical enquiry.

Reliability:

The following points will act as guidelines on achieving higher reliability inthe oral tests:

1. Higher reliability inthe oral examination will primarily depend on the integrity of the teacher. If possible more than one examiner should be appointed to conduct the examination.

2. Systematization of oral tests, examiner's experience, training, alertness, tact, awareness and knowledge will reduce biases in marking the responses.

3. Adequate sampling of content and specifications will help in achieving higher reliability. Subjectwise blue-prints need to be developed for framing a variety of questions.

4. Weightages to different aspects to be evaluated should be determined in advance in order to have uniformity in marking by the same examiner or by more than one examiner.

5. Recording of marks awarded by each examiner should, for the sake of confidentially , be made in a separate sheet and the final award should be made out of the average of these marks to ensure higher reliability.

EVALUATION OF RESPONSES : INPUTS TO BE CONSIDERED:

1. In order to minimise the element of subjectivity in evaluating the performance of and examinee, it would be advisable if a five point scale of grading is used as:

   A - Excellent answers - 75% or more marks
   B - Very Good answer - 60 to 75% marks.
   C - Good answer - 50 to 60% marks
   D - Average answer - 40 to 50% marks.
   E - Below average answer- below 40% marks.

While assessing the responses of an examinee, some specific suggestive inputs given below may be taken into consideration. Based on item wise marks, an overall grade may be worked out for each examinee. Depending upon the responses, weightages may be given to suggestive inputs. This is needed to bring out uniformity in marking by different examiners.

1. reproduction and understanding of concepts inthe subject.
2. problem-solving/application.
3. critical thinking and creative appreciation.
4. coherent presentation of answers.
5. skills (use of tools, materials etc.)
6. an ability to demonstration of facts, figures in support of analysis.
7. general appearance showing presence on mind and behaviour of and examinee.
8. general interest in the skill.

(2) Oral tests should be administered skillfully to achieve reliable and valid results. The teacher should ask questions loudly and clearly so that the student listens and understands properly.

(3) The type of oral questions should be adaptable. The teachers should be able to construct the questions to suit the student and adapt it to another situation of the same type. Care must be taken to keep all questions comparable in difficulty in each category. Although grading of oral tests is usually subjective, efforts should be made to eliminate the influence of external factors such as favouritism, personal bias etc.

(4) For evaluation of personality traits:

- quickness
- gestures
- mannerism
- level of confidence
- alertness
- spontanoity
- reaction time, etc.

along with the insight over the subject matter and method of presentation should be considered.

Recommendations:

1. Qualitative improvement in vocational education is possible only when examination evaluates different skills-written, oral and practical in the students. Writing as well as speecth and performance are important and should be developed in balanced manner and evaluated appropriately.

2. Oral tests should be introduced in the school system as supplementary tool to the written and practical tests.

All students would need to be exposed to this system by use of varied forms of oral tests in order to allow students to speak what he/she thinks or knows.

3. Skill/Job wise specific areas which are most amenable to evaluation through different forms of oral examination need to be identified. Oral examination may be resorted to in those areas for measurement of student's achievement and diagnosing difficulties on the spot.

4. Every term/periodical assessment in school should have oral examination with proportionate weightage in the composite marking scheme.

5. The main focus in oral test should be to develop the ability to express without fear or faltering. The examinee should be able to marshall the relevant points without wavering.

6. In vocational subject's oral examination tests student's quicknes in supplying correct and precise answers, clarity of thought, presence of mind etc. are to be focussed.

7. In view of the fact the NPE 1986 envisages continuous and comprehensive evaluation at all stages of education inclusive of the vocational education, it would be in the fitness of things to make a judicious allocation of weightage to oral tests in both internal and external examinations.

8. Under the present circumstances, introduction of oral examination at public examinations may not be feasible but its utility for the external examination could not ruled out after a successful field trial. Attempts may be made to introduce oral examination at public examination also on experimental basis in a phased manner

9. Contact points in each state may be established and with the help of willing teachers, oral examination should be tried out on an experimental basis as a measurement device in vocational education.

10. Question banks suited to this test should be developed on all vocational subjects-topicwise, which may be most amenable to oral examination.

11. The role of a teacher is important in organising oral tests. He/she should be a man/woman of integrity, and very fair in conducting oral examinations and giving grades to the students on the spot. A teacher should develop an attitude of self reliance and self sufficiency amongstudents.

12. Proper planning of Oral tests is essential and for this Oral Tickets may be developed.

Sample Ticket for Oral examination in office practice

Topic:- Duplicating

Sl.No.	Question	Key words/clues to answers	Marks allotted	Specification
1.	What type of paper is to be used for duplicating.	Stencil paper	2	Recalls
2.	What material is used for correcting the mistakes on stencil ?	Correcting Fluid	2	Recalls
3.	Name the hand tool which is used for cutting the stencil in hand written form?	Stylus Pen	2	Recalls
4.	Which method of copying you consider appropriate for taking hundred copies of a circular ?	Duplicating.	2	Compares
5.	What adjustment in type writer is needed for cutting the stencil ?	Making the ribbon inactive.	2	Recalls
6.	Name the key which is used to make the ribbon inactive.	Ribbon control key	2	Recalls

2. Written tests:

Written test a form of closed book examination in which the examinee is given a set of questions in written form and is required to answer them on an answer sheet in a fixed period of time. The answer sheets are valued by the examiners and marks are allotted as per the expected answers of the questions. It is one of the oldest form of examination and developed a large number of evils in it, as:

1. Questions set mostly require recalls of information on the part of examinees.
2. Almost completely overlook the testing of higher objectives like understanding, application, analysis, synthesis, critical training, skills etc.
3. Subjectivity to the paper setter in setting a question paper.
4. Subjectivity of the examinee in interpreting the question set with a view to determining the scope of the expected answer.
5. Subjectivity of the examiner in examining the answer scripts.
6. In-effective coverage of the content.
7. Administrative problems of cophing, malpractices etc.

The written tests may have the following types of test questions:

1. Essay Type or long answer type questions.
2. Short answer type questions.
3. Very short answer type or Objective type questions.

In place of objective type questions there is more suitability in the very short answer type questions as the former leaves more scope for malpractices and guessing.

The administrative procedures of conducting of examinations should be very well planned and carefully implemented if the desired out-comes are to be effectively achieved. The written examination is to be re-designed to confirm the major goals and the changed academic requirements.

Re-designing of question-paper:

A question paper is not a random assortment of questions. It has to be structured according to a pattern decided in advance with following inputs:

1. Preparation of a design:

The question paper design provides the policy which lays down the chief dimensions of a question paper. Weightage to different objectives, different areas of content, different forms of questions, scheme of options, sections in the question paper etc. should be decided in advance.

2. Preparation of a Blue Print:

Blue print of the question paper is basically a three-dimensional chart showing the placement of different types of questions in respect of the objectives tested, content area covered, form of question. It also indicates numerical weightage given to each question, scheme of options to be adopted in framing the questions. So, it is a operational lay out of the design for preparing a question paper, on the basis of one design several blue prints of question paper can be made.

3. Preparation of questions based onthe blue Print:

With development of blue print the dimensions of each of the questions to be inclded in the question paper stands defined. As per location on the blue-print

individual questions have to be framed. The questions should be so worded as the examinees understand the scope and length of the expected answers.

4. Editing the question paper:

a) Assembling the questions:

The questions are to be assembled usually on the basis of their form.i.e. fixed response type questions (Objective type, one word, phrase answer or very short answer type) may be put in one section, and the free response type questions (theshort answer and essay type) may be placed in another section.

b) Instructions to the examinees:

The directions regarding what the students are required to do need to be clear, specific and pin pointed. General instructions may be given in the begining of the paper and specific instructions relating to each section at the begining of the corresponding sections.

c) Implications for administration:

It may be necessary to give specific limit for thesection containing the fixed response type of questions. It will help to minimise the chanses of common mal-practices.

5. Preparation of the scoring key and marking scheme:

It is essential to frame the scoring key and the marking scheme, simultaneously with framing of questions of a question paper. Scoring keyis to be prepared for objective type questions and marking scheme for essay and short answer type questions.

After administration of the question paper and getting it's results, the analysis is also necessary to provide feedback for teaching and learning process.

Recommendations:

1. There should be development of detailed policy statement (designs) for each question paper by the examining agency and forwarding the same to the paper setters to be followed for setting balanced question papers in regard to subject matter to be covered, abilities to be tested, the form of questions to be included, the pattern of options, scheme of sections, wording of questions, etc.

2. Only those persons should be appointed as paper setters who are trained in the concept and techniques of evaluation in vocational education.

3. There should be adoption of appropriate strategy for the administration of the question papers particularly when they have fixed response questions. Question paper should be divided in different sections.

4. There should be mechanised processing of results. It saves time and labour and at the same time ensures greater accuracy.

5. There should be introduction of a system of grading by replacing the traditional scheme of giving marks in vocational subjects. When the students are given marks it is a common phenomenon to find students either gaining or losing (say division) just because of a single mark. If an overall assessment is done such mistakes may be easily avoided.

3. Practical Examination:

The vocational subjects are applied subjects and the purpose of vocational education is to develop practical skills and scientific attitude in students. Proper weightage is to be given to the psychomotor

skills and also to appreciation, interests and attitudes. Psychomotor skills include manipulative skills, observation skill, drawing skills, reporting skills etc. There is need to define skills into their components for the purpose of evaluation of it, so that the nature and scope of project/practical/job is properly delineated.

Practical examination is a form of closed book examination in which examinee is allotted some job, practical or skill to complete in a given time. The examinee performs the job and at the same time examiner(s) observe and compare the performance with standard one and value in the form of marks or grade, but grades are considered better in vocational education. It may involve group work or individual work. Appropriate weightage will be given to the process and product both.

Development of skills is a continuous process and the progress should be monitored by the vocational teacher. The evaluation of practical work should be internally conducted by the concerned vocational teacher/teachers and should be shown on the performance record of the student. At the end of plus two stage also external evaluation may not be a right approach for vocational education. However, if the programme is likely to suffer in the absence of such an evaluation, (external), the practice of examining the students by external examiners particularly drawn from the cluster of schools of which a particular school is a member may provide a better alternative.

The Vocational Teachers should keep a systematic record of students progress in vocational education, apart from the teacher's record, each student may be asked to maintain his own record in form of student diary. They

should make necessary entries in diary and submit to the teacher after completion of the job. It may also work as feedback to the teacher for his further teaching.

A well designed plan of continuous and comprehensive evaluation using worthwhile evaluation criteria should be prepared as per needs of the subject area. Every practical examination should be having at least 5% weightage on oral test. The assessment may be made and recorded after every operational stage of activity/project/job.

Product or result of performance, process of performance and development of personality traits are the three aspects which are equally important in teaching and testing of a vocational subject. It will be desirable to specify them in terms of specific tasks envisaged under each aspect, which will differ in vocational subjects, and different topics/skills in a vocational subject. A clear specification will help both the vocational teacher and testers for objective based evaluation.

Process Vs. Product Evaluation:

The evaluation which pertain to the process is referred to as formative evaluation and that concerned with the product is called summative evaluation. But the product is cummulative entity and it's components begin to emerge during the process, it becomes difficult to differentiate between formative evaluation and summative evaluation. In fact, they are supplementary and complementary to each other in the whole enterprise of evaluation.

For evaluating students on skills, both process and product of performance are involved and as such both have to be assessed process of performance maybe judged in terms of speed which can be measured more objectively

It can also be measured in terms of quality of performance that indicates the effect on the product of performance.

Evaluation of product is more reliable that evaluation of process as:-

1. More time is available for its assessment.
2. Independent judgement of scores by different examiners is possible to check results for inter examiner reliability.
3. a scale of product can be developed to facilitate objective scoring.
4. examiners can be trained in the use product scale and their reliability in grading can be checked against the experts judgement.

A thorough acquaintance with both is, therefore, essential while selecting a particular vocational skill and developing instructions for evaluating practical work. Since observation of process is time consuming and rate of performance may vary from individual to individual, proper assessment of process of performance is difficult although efforts need to be done in this direction.

Evaluation of Practical records:

Some of the points which should be taken into consideration in evaluation of practical records are listed as:

The practical records should be written in a uniform style through out. Headings and materials should follow a consistent format. Report must be written in clear and concise terms. The tone of the records should be one of the appropriate modesty as per needs of the vocational subject. Since, records are the reports of what the student has done, it should permit the reader to reconstruct what happened without distortion. They should be valued as per the quality as mentioned above.

Recommendations:

1. The vocational teachers should have a positive attitude of mind towards practical work and hardly typical field problems they should pose.

2. While evaluating skills, one must take into account the various types of component skills involved. During the instructional process these component skills will have to be developed in a proper sequence.

3. Practical evaluation in the area of vocational courses can not be a one time affair. Appraisals will have to be done continuously as a part of the instructional programme. After completion of each unit a test of practical performance should be administered to assess the relevant skill of the student.

4. The product producted by the student may be judged by more than one teachers separately, and average of the marks may be recorded as grade. A well turned out product with minimum input of time, labour and money but maximum input of imagination, originality, precision and preserverance should be rated high.

5. If possible the persons from employing agencies may be involved at the time of evaluation of practical skills.

6. Internal tests should be given with regular intervals and systematic record of the assessment should be maintained.

7. Directorate of vocational education should finalise a uniform internal assessment system for vocational schools throughout the state for this purpose systematic guidelines are to be formulated at the state level.

Grading

Grading is a system of classification of students into a few ability groups or categories according to their level of achievement in an examination. The achievement is defined in the form of numerical or letter grades each of which denotes a certain level of performance, generally not in absolute terms, but in relation to the performance of the whole group.

When marks are used as a criterion for selection, there is an implicit assumption that the student getting 60 marks is superior to the one getting 59 marks. The declaration of results in terms of grades is essentially to discourage such misuse of marks and to provide a valid and relistic categarisation of students that takes into account the limitation of the reliability of examination. It is mainly because of these considerations the national policy in education, 1986 has emphasised the need of grading system in examination.

Limitations of marking:

1. Marks are absolute measure of performance and there is much variation in the pattern of marking.
2. In a 100 marks question paper a 101 points scale is available for marking, but due to setting of question paper or marking quite a narrow range of the scale is actually used. For example in mathematics the entire range 0-100 is used but in english it is 0-80, in history 0 to 60 or 70 and so on. As a result 70 percent of marks in Mathematics do not indicate the same level of achievement in History.
3. Inter-examiner variability is high even in centralised or spot evaluation of answer scripts. In practice when marks are used for selection purpose a student with one higher marks is selected while his true marks may be the same.

4. Reliability studies of examination marks have shown that standard error of measurement in a 100 marks paper is usually 5 to 15, depending on subject, type of paper and marking. If SEM is 10, then for a student whose true marks are 55 the chances are that his actual marks are anywhere between 45 to 65. Then the santity of the difference looses.

5. It is also not justified to add the marks of different subjects to arrive at a total score of the student. Since the marks of different subjects are on different scales and also measure different attributes, their addition amounts to totalling quantities which cannot be added. Such totalling of marks is analogous to adding air-pressure, temperature and humidity and then supposing that the sum of these numbers is the description of weather.

6. For crucial decision of passing of fai . a student a cut score of 33 or 35 or 40% is used, but in view of the poor reliability of marks, a large proportion of students get misclassified unjustly. Usually benefit of doubt is given to the boarder line cases by examiners individually as well as at the board level inthe form of grace marks which leads to heaping of students just above the pass marks. Moreover to another and from one year to another in the same subject would make any one question the basis of using the same fixed cut score as minimum pass percentage in every subject and every year in the same subject.

To overcome these shortcomings of marks it is proposed to use grades instead of marks for declaring student's sesults in wocational education. This however does not mean that marks should be done away with completely and grades should be used even in marking answers to various questions in a paper. Marking system may continue as it is, only the marks should be converted to grades in such a way that they define relative levels of achievement of students uniformly for all subjects.

Methods of Gradings:

(a) Grades based on absolute marks: It involves direct conversion of marks into grades. Whatever the distribution of marks in a subject, the marks between two fixed points on 0-100 scale would correspond to a given grade. One of the example may be:

75% or above	: Distinction	- Grade	A
60-74%	: 1st Division -	"	B
45 - 59%	: 2nd Division	"	C
33-44%	: 3rd Division -	"	D
Below 33%	: Fail -	"	E

It is possible to form any number of grades as per group of marks. However, in view of disparity there may be no student in english getting grade A while a quite often will be getting grade A in mathematics. Here raw marks are treated as if they were the standard scores, which can be equated. It means the assumption that any given score say 60, denotes the same level of achievement whatever be the subject, question paper or year of examination. The advantage with this method is that it is very simple and state forward to apply. The grades basing of absolute marks indicate his own achievement without any importance to others performance.

(b) Grading based on relative marks: It involves conversion of marks into grades on the basis of random order or percentiles. In this case the distribution of marks is taken into consideration determining the range of marks corresponding to different grades. For Example:

the top 5% students	- Grade A
Next 10%	- Grade B
Next 10%	- Grade C etc.

Here the actual cut off score for grade A in one subject may be quite different from that of another subject. The grade that a student gets depends on the relative performance of the group. The approach is test oriented.

.....

EVALUATION CRITERIA FOR STENOGRAPHY TRADE

Dr. R.N.Dishit

Evaluation of performances in a skill building subject like stenography and typewriting has a number of uses. It is used as a self checking device by both the teacher and the students in class room situations. It may also be used by the public examining bodies for awarding the competency certificates for employment and promotion. The importance of evaluation as an admission criteria and a guidance device can also never be underestimated. The merit-ranking is also one of the important reasons for which evaluation is done. Lack of training in the evaluation techniques of SG & TY, the measurement do not satisfy the three basic principles of reliability, validity and objectivity. Keeping in view the intricacies of evaluation in a trade like SG & TY, few suitable international standards measuring the performances have been discussed in this paper.

Evaluation technique in stenography

The Shorthand writers in the public examinations take dictation for about a period of ten minutes at the prescribed speed. They are asked to transcribe the same at about fifteen to twenty words a minute. A good stenographer usually follows the six links of the transcription viz., "Shorthand, typing, English, punctuation, spelling and work habits". The examiner in awarding the number/marks follows the following foot steps.

(a) First of all, the transcript should in no way alter the very spirit of the content of the passage or the letter given for transcription.

(b) Five per cent errors of omission/or commission are tolerated inthe transcription sheet.

(c) One who commits more than five per cent mistakes are disqualified.

(d) Award the qualifying marks to those candidates who commit five per cent mistakes.

(e) Award more and more marks to those candidates who commit less and less percentage of mistakes. Example: If the qualifying marks in a public examination is 50 per cent, the gradation of the gradation of awarding marks will be as follows:

5 per cent mistakes	50	marks
4 per cent mistakes	60	marks
3 per cent mistakes	70	marks
2 per cent mistakes	80	marks
1 per cent mistakes	90	marks
No mistakes	100	marks

Evaluation technique in straight-copy typing

The evaluation is, however, little more complicated in typewriting public examinations. The evaluators in a typewriting public examination should have the following knowledge and understanding. These rules are made applicable for straight copy typing.

1. Five strokes constitute a word. The striking of shift key, the space bar and the tabulator are also counted for this purpose.

2. Ten strokes are deducted from the total typing strokes for every error of omission and commission.

3. Gross Words are the **total** number of words typed including the wrongly typed words. Net-words are calculated after deducting from the gross words fifty strokes or ten words for every full mistake committed.

4. Net words typed divided by the duration of time is the average speed (i.e. words per minute/WPM) of the candidate. This forms the basis of awarding the marks.

5. Calculate the average gain or loss of a candidate in the speed test. This is arrived at by dividing the minimum pass marks by the required number of speed per minute.

6. Now multiply the maximum marks with the average gain or loss as calculated above. This will be the marks to be awarded to the candidate.

<u>Example</u>

No. of words in the passage 300
Duration of typing .... 10 minutes
Maximum marks 20
Minimum pass marks 10

Total words typed 400
No. of words wrongly typed.... 2
Marks to be awarded will be calculated as follows:

Penalty 2 x 10 = 20 words.
NWPM (Net words per minute) 380 ÷ 10 = 38
Average gain/loss per minute =
10 ÷ 38

Marks to be awarded (10 ÷ 30) x 38 = 12.6 or 13

The acceptable standards however, for internal assessment in typewriting performances may be as follows.

(a) <u>Gross words a minute (GWAM)</u> with <u>Error limit</u>.

Here the total words are divided by the duration of the test with no deduction for errors. No. of errors committed however simply mentioned. But if the errors exceeds five per cent the student is penalized for the mistakes exceeding the limit i.e. five per cent.

(b) Net words a Minute (NWAM) is calculated after penalising for every error. Ten words are deducted from the total words typed. The Net words are divided by the duration of test.

(c) Correct Word a Minute (CWAM): In order to calculate the CWAM, the number of errors are simply deducted from the total number of words typed. This figure is divided by the duration of time to arrive at the speed per minute.

(d) Net Performance Rate (NPR): Here no penalty is charged for corrected errors, except for the time that is lost in erasing and correcting them. A penalty is, however charged for uncorrected errors which is usually higher than ten words an error.

Given below is a list of errors in typewriting for which the candidate is penalised i.e. ten words deducted for each error.

(a) Wrong capitalization
(b) Non capitalization
(c) Over typing
(d) Space given where not required
(e) Transposition letters.
(f) Spelling mistakes.
(g) A word/figure or letter left out in typing.
(h) Addition of any letter or word.
(i) Typing of figures in places of words and vice versa.
(j) Improper spacing before and after punctuation signs.
(k) Substitution of a word.
(l) Insertion of any word or letter by hand with pen or pencil.

Mechanical mistakes, and repetitive mistakes like same spelling mistakes or improper spacing before and after punctuation signs are penalised once. Each of such mistakes may be treated as half mistake or exempted in special circumstances.

....

Evaluation technique in Production Tests: Production tests are conducted for typing out business letters, rough drafts, manuscripts, tables and so on. The production test is a timed test of half an hour or so within which the candidate is expected to produce a mailable letter or a clean draft or table and typing the manuscripts as per the directions. Within the prescribed time-limit the candidate is required to do all the activities necessary to accomplish the project of typing a mailable letter or a table or typing a confused manuscript in its proper perspective.

The following two standards of measuring production tests are familiar with the examiners.

(a) Mailable Words a Minute (MWAM): Standard was developed by Balsley through extensive research. This standard penalyzes a typist for an error by the time it takes him to make a correction. She found that 26 seconds are needed, onthe average to make a correction without a carbon copy.

(b) Production Rate a Minute (PRAM): In a gross-PRAM, no penalty is charged for errors. Net- PRAM is required in a public examination where errors are not corrected. Production Rate A Minute is calculated as follows:

- Count all words in 'Acceptable problems'.
- Count half the words inthe 'unacceptable problems'
- Divide the total of he above two by the time of the test.

.....

REPORT OF THE ORIENTATION PROGRAMME FOR VOCATIONAL COMMERCE TEACHERS HELD AT R.C.E., BHUBANESWAR FROM THE 1ST MARCH TO THE 10TH MARCH, 93.

An Orientation Programme for Vocational Commerce Teachers, Junior Lecturers and Instructors was held in the Extension Unit at the Regional College of Education, Bhubaneswar from the 1st to the 10th March, 1993. The objectives of the programme were:

- To identify the vocational areas in business,
- To devise ways and means for self-employment,
- To evolve the criteria of evaluation for certain vocational subjects like Stenography, Type writing, Office practice and Accountancy,
- To develop the skill of handling the sophisticated business machines like electronic typewriters, photo-stat copier and the micro computers,
- To chalk out the layouts and requirements of a business vocational department in the school,
- To develop the skill of preparing practical note on vocational business subjects, and
- To acquaint the participants with the new techniques, methods and approaches of teaching vocational business subjects.

For the successful implementation of the programme, methodologies like lecturing, discussion, study tour and group discussion were adopted. Thirty participants were invited to participate the programme but only twenty four attended. They were two from Bihar, one from Sikkim, one from Arunachal Pradesh, three from Assam and seventeen from Orissa.

Our achievements in the programme have been as follows:

- More of vocational areas in commerce have been identified like Tax Assistanceship, Accounts Assistanceship, Accounting for small traders, Cost Assistanceship, Stores Assistanceship etc.
- Exposure to entrepreneurial motivation for self-employment,
- Exposure to self-employable schemes as envisaged by the SIDBI,
- Development of the skill of writing practical lessons in Vocational Commerce areas,
- Exposure to uptodate business machines including Laminator, binders, electronic type-writers and micro-computers,
- Appreciation of (a) various methods, technique and approaches, (b) grading and ranking techniques of vocational business subjects,
- We had a study tour to the neighbouring areas on the 7th March, 1993.

Lastly, evaluation of the programme was done. The participants were asked to ventilate their feeling through a questionnaire. They appreciated the practice of 'on the job training' writing onthe basis of skill components. They felt the need of appointing a person in every vocational school who should take care of guidance, counselling and placement.

The Programme Director is thankful to the Principal and Dean of Instructions for their cooperation and guidance.

The Programme Director is also thankful to the guest speakers who encouraged participation, delivered talks and discussed. Thanks are also due to the Resident Manager, Ollivetti (Group Industries), and the Manager, Otto Business Machines for their fruitful demonstration of sophisticated Business Machines.

Lastly thanks go to the Asst.Programme Coordinator, Extension Services Unit and his members of the staff for their valuable cooperation.

Sd/-
(Dr. R.N. Dikshit)
Programme Director

AN ORIENTATION PROGRAMME FOR VOCATIONAL
COMMERCE TEACHERS - An evaluation

Duration : March 1 to 10,1993 Venue: R.C.E.,Bhubaneswar

Each participant is requested to tick out his/her preference under each of the following item.

1. Achieving the objectives of the programme

(a) Fully (b) Mostly (c) Partially (d) Not at all

2. Duration

(a) Too long (b) long (c) alright (d) short.

3. Programme design

(a) Very Satisfactory (b) Satisfactory (c) Manageable

(d) Not at all satisfactory

4. Coverage of the programme

(a) Fully (b) Mostly (c) Partially (d) Not at all

5. Effectiveness of the session: Write

(A) if most effective

(B) if effective

(C) if somewhat effective

(D) if not at all effective

Date	Programme	Remarks
1.3.93	Vocational Schemes in India	________
	Vocationalization of Business Edn.	________
	Demonstration of Business Machines	________
2.3.93	Vocational teachers	________
	Physical facilities and equipments for Vocational Commerce class . . .	________
	Preparing practical note on Office Practice	________
3.3.93	Commercial Auditing as a vocational subject	________
	Government Accounting	________
	Teaching approaches of Accountancy	________

P.T.O.

Date	Programme	Remarks
4.3.93	Commercial Auditing as a vocational subject	________
	Govt. Auditing as a vocational subject	________
	Curriculum construction in vocational commerce subject	________
5.3.93	Computers in Vocational subjects working on computers	________
6.3.93	Insurance as a vocation evaluation procedures	________
	Evaluation technique in SG and Typing	________
	Evaluating students' programme	________
7.3.93	Study Tour	________
8.3.93	Demonstration of Electronic typewriter	________
	Schemes of assistance of SIDBI	________
	Entrepreneusial Motivation	________
9-3-93	Group Work	________
10-3-93	Case study approach of teaching crossing of cheque	________
	Self-employment opportunities for +2 Vocational students	________

6. (a) Your overall observation and suggestions for improving future programme ________________

(b) What are the newer vocational areas for which courses should be started ?

(c) What types of training do you need for your professional growth ?

REGIONAL COLLEGE OF EDUCATION, BHUBANESWAR

ORIENTATION PROGRAMME IN VOCATIONAL COURSE SUBJECTS

Date	10.00 - 11.30AM	11.30 - 1.00 P.M.	1.00PM-2.00PM	2.00 - 3.30P.M.	3.30 - 5.00 P.M.
1.3.93	Registration	Inauguration	L	Vocationalization of Education-an overview (R.Raizada)	Demonstration of Business machine. (S.B.Mathur and Anuj Uppal,HCL)
2.3.93	Vocational Teachers (Mr.R.Raizada)	Physical facilities and equipments for Voc.Comm. class.(Dr.R.N.D.)	U	Preparing practical note on office practice.(Dr.R.N.D.)	Group Work
3.3.93	Auditing as a Vocational subject. (Prof.D.C.Nayak)	Govt.Accounting (Mr.G.Sharma)	N C	Teaching approaches of Accountancy. (Dr.R.N.D.)	Group Work
4.3.93	-do-	Group Auditing (Mr.A.Nanda)	H	Curriculum construction in Voc.Comm.subjects. (Dr.R.N.D.)	Group Work
5.3.93	Self employment opportunities for +2 students. (Mr.S.B.Mishra,IEDO)	Computers in Voc.subjects (R.Raizada)	B R	Working on computers (R.Raizada)	Vocational schemes in India(Prof.STVGA)
6.3.93	Insurance (Mr.S.Samal,D.M.LIC)	Evaluation procedures. (Dr.P.Das)	E	Evaluation techniques in S.G. and typing. (Dr.R.N.D.)	Evaluating students progress.(R.Raizada)
7.3.93	Practical Banking (Chief instructor,SBI Trg.Centre)	Case study approach of teaching crossing of cheques.(Dr.R.N.D.)	A	Group Work	Group Work
8.3.93	Demonstration of Business macnines. (Mr.R.N.Rathasharma)	Schemes of assistance of SIDBI.(Mr.G.Satyanarayanan)	K	Entrepreneurial Motivation. (Mr.S.B.Mishra)	Group Work
9.3.93	Group Work	Group Work		Group Work	Group Work
10.3.93	Group Work	Valedictory Function		Disbursement of T.A. and D.A.	